कथा-कुंज

MOTILAL BANARSI DASS BOOK SELLERS & PUBLISHERS
LAHORE

संपादक

जगन्नाथ अग्रवाल
उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

Katha - Kunj

कथा-कुंज

[हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों का
प्रतिनिधि संग्रह]

सम्पादक— Jagarnath Aagrwal
प्रो० जगन्नाथ अग्रवाल एम० ए,
पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर
श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'
बी०ए० एल एल०

SPS
891.433 J 19 K
11561

प्रकाशक
मोतीलाल बनारसीदास
हिन्दी-संस्कृत पुस्तक-विक्रेता
सैदमिट्ठा बाज़ार लाहौर

Motilal Banarsidass Lahore

प्रथम संस्करण] सन् १९३८ [मूल्य २)

1937

प्रकाशक—
सुन्दरलाल जैन
पंजाब संस्कृत पुस्तकालय
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

295

acc: no. 11561
H 83.1
J 19 K

Rs 2-0-0

सर्व प्रकार की पुस्तकें हमारी शाखा से मिल सकती हैं:—
मोतीलाल बनारसीदास
संस्कृत-हिन्दी-पुस्तक-विक्रेता—**बांकीपुर-पटना**

[सर्वाधिकार स्वरक्षित]

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

मुद्रक—
शान्तिलाल जैन
मुम्बई संस्कृत प्रेस,
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

विषय सूची

	दो बातें	५
१	स्व० प्रेमचन्द (गुल्ली-डंडा)	३९
२	श्री० सुदर्शन (गुरु-मंत्र)	५७
३	श्री० चतुरसेन शास्त्री (बावर्चिन)	८३
४	श्री० जैनेन्द्रकुमार (अपना अपना भाग्य)	१०१
५	श्री० राजेश्वरप्रसाद सिंह (आदर्श)	११५
६	श्री० विनोद शंकर व्यास (बदला)	१४१
७	श्री० वाचस्पति पाठक (मन्नू)	१५१
८	श्री० चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (काम काज)	१६३
९	श्री० श्रीनाथ सिंह (बालक का सुधार)	१८१
१०	श्री० कृष्णानन्द गुप्त (अपराधी)	२०१
११	श्री० अज्ञेय (शत्रु)	२१३
१२	श्री० भगवती प्रसाद बाजपेयी (महापुरुष)	२२१
१३	श्रीमती शिवरानी देवी (विमाता)	२३७
१४	श्रीमती ऊषा देवी मित्रा (सान्ध्य-तारा)	२५९
१५	श्री० पृथ्वीनाथ शर्मा (रज्जू का सौदा)	२७५
१६	श्री० उपेन्द्रनाथ 'अश्क' (पाषाण)	२८५

Best story

Read the stories which are marked.

दो बातें

कहानी उतनी ही पुरानी है जितना कि मानव।

सृष्टि के आरम्भ में जब एक सुनाने वाले को एक सुनने वाला मिला तभी शायद कहानी ने जन्म लिया। आखिर अपनी अपूर्ण परिभाषा में कहानी है ही क्या?—किसी घटना का वर्णन मात्र! मनुष्य के जीवन में जब भी पहली घटना घटी, सुनाने के लिए जब भी उसके पास कुछ हुआ, सुनने के लिए जब भी उसे कोई मिला तभी कहानी का आविर्भाव हुआ।

तनिक कल्पना कीजिए कि प्राचीन काल का कोई व्यक्ति—जो नहीं जानता कि यह जो विशाल पृथ्वी उसके सामने खुली पड़ी है, अपने में सहस्रों प्रकार की वस्तुएं पैदा करने की क्षमता रखती है, नहीं जनता किस प्रकार हल चलाया जाए, खेती बोई जाए और पृथ्वी से अन्न पैदा किया जाए और जिसकी पेट पूजा का एकमात्र आधार मृगया है।—कल्पना

कीजिए कि आदि काल का ऐसा ही कोई पुरुष किसी हिंस्र पशु के शिकार को निकलता है। उस पशु के पीछे वह बहुत दूर तक चला जाता है।—झाड़ियों से निकलता, झाड़ झंखार को पार करता। अन्त में ऐसी जगह आ जाती है कि पशु आगे नहीं बढ़ सकता। मुड़ कर वह मुक़ाबले को तैयार हो जाता है। दोनों एक दूसरे पर झपटते हैं। युद्ध होता है। शिकारी घायल तो होजाता है, पर अपने शिकार को वह मार गिराता है और अपने घाव की परवाह न करके अपने निवासस्थान को वापस आजाता है। अब यदि उसका एक भी साथी है, शिकारी को बात करनी आती है और उसका साथी उसकी बात समझने की योग्यता रखता है, तो यह स्वाभाविक है कि वह अपने साथी को, उस हिंस्र पशु से अपनी मुठभेड़ की कहानी सुनाए।

सुनाने के लिए जिसके पास कोई घटना है, कंठ जिसका मूक नहीं है, वह उसे सुनाएगा ही, और जो वह सुनाएगा वह किसी न किसी रूप में कहानी ही की सूरत लेगी। अब यदि वह शिकारी बातूनी है, या शिकार में अपनी सफलता पर गर्व से फूला नहीं समाता, तो वह उस घटना को बढ़ा चढ़ा कर और भी ज़्यादा दिलचस्प बना कर बयान करेगा। यहीं अपरिपक्व कहानी में कला का समावेश होता है। फिर ज्यों ज्यों मानव जाति का इतिहास पुराना होता जाता है; जीवन में व्यापकता

और विभिन्नता आती जाती है; घटनाएं अधिक होती हैं, सुनाने के लिए बहुत तरह से बहुत कुछ होता है; कहानी भी व्यापक और विभिन्न रूप धारण करती जाती है। यहां तक कि एक समय आ जाता है, जब, आज के युग में कहानी उतनी ही व्यापक है जितना कि जीवन और कला उतनी ही सुधरी हुई है जितनी कि सुघड़ता !

प्राचीन हिन्दी कहानी

कहानी के बीज, जैसा कि हम ने कहा, आदि काल के उस शिकारी की कहानी में भी हैं। वे हैं—घटना और उस घटना की मनोरंजकता। यदि घटना दिलचस्प नहीं, तो सुनने वाला ऊब जाएगा और कोई और बात सुनने का इच्छुक होगा। यही मानव प्रकृति है। कहानी जब सुनाई जाती थी, तब उस काल के कहानी सुनाने वालों को और बाद को जब लिखी जाने लगी, तो उस काल के आरम्भिक लेखकों को इस बात का ज्ञान था। यही कारण है कि हमें प्राचीन काल की कहानियां, आज की कला के अनुसार, चाहे कितनी ही अस्वाभाविक तथा काल्पनिक मालूम हों, हम उनके एक गुण से इनकार नहीं कर सकते और वह गुण है उनकी मनोरंजकता। प्राचीन संस्कृत साहित्य की कहानियां अध्यात्मविषयक हों चाहे न, उन में दिलचस्पी ज़रूर थी। इस सम्बन्ध में हम पंचतंत्र और बैताल पचीसी का नाम ले सकते

हैं। अरब और फ़ारस की कहानियों में भी यह दिलचस्पी कम नहीं थी। अलफ़ लैला* आज भी उतनी दिलचस्पी से पढ़ी जाती है। उर्दू के आरम्भिक काल की कहानियों पर नज़र डालिये, 'फिसानाए आज़ाद'× और दूसरी तत्कालीन कृतियां खूब मनोरंजक हैं। प्राचीन लेखकों ने यह मनोरंजकता पैदा करने के लिए अपनी कहानियों को कौतूहल प्रधान बनाया या उन में हास्य रस की पुट दी। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आपको वहां न मिलेगा। इसके कई कारण हो सकते हैं। पहला तो यह कि उस समय कहानी को साहित्य का अंग नहीं माना जाता था। कविता का साम्राज्य था। कहानियां लिखी नहीं जाती थीं, हां सुनाई जाती थीं और चूंकि सुनाने वालों के सामने उन के श्रोताओं की दिलचस्पी मुख्य ध्येय था, इसलिए वह अपनी कहानी अधिक से अधिक कौतूहल-पूर्ण बनाते थे। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के लिए तब कोई जगह नहीं थी। आज यदि हमें कहानी में कोई बात समझ न आए, तो हम दो पृष्ठ उलट कर उसे फिर पढ़ सकते हैं, तब ऐसी बात न थी। कहानी कहने वालों के सामने श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध बिठाए रखना आवश्यक था, इसलिए घटना के बाद घटना का

---

* फ़ारसी भाषा की कौतुहलप्रधान पुस्तक।

× उर्दू गद्य की एक आरम्भिक पुस्तक।

वर्णन करके श्रोताओं के कौतूहल को बढ़ाए जाते थे। पहले क्या हुआ, यह सोचने का अवकाश उन्हें न होता। आगे क्या होगा इस की उत्सुकता बनी रहती। ज्यों ज्यों कहानी बढ़ती रहस्य और भी गहरा और भी जटिल होता जाता, यहां तक कि जब कहानी समाप्त होती, लोग 'वाह' 'वाह' कर उठते और ऐसी उत्तम कहानी 'घड़ने' के लिए सुनाने वाले की प्रशंसा करते। बाद को जब कहानी लिखी जाने लगी तो उसका यह गुण वैसे का वैसा ही बना रहा।

हिन्दी में कहानी की सबसे पहली पुस्तक अपने अत्यन्त अपरिपक्व रूप में वैष्णवकाल, अर्थात् १६ वीं शताब्दी में गोकलनाथकृत 'चौरासी तथा दो सौ वैष्णव वार्ता' के नाम से मिलती है। इसके बाद तीन सौ वर्ष तक गद्य में कोई पुस्तक नहीं मिलती। इसका यह तात्पर्य नहीं कि उस समय घटनाएं नहीं होती थीं, या कहानी सुनने सुनाने की रुचि न थी। कारण यह था कि लोग जो कुछ सुनाना चाहते थे, काव्य द्वारा सुनाना चाहते थे। 'प्रेम-मार्गी-सूफ़ी-शाखा' के कवियों ने पद्य में ही कहानियाँ लिखीं। जायसी का 'पद्मावत' इसका उत्तम उदाहरण है। गद्य में कहानी न लिखे जाने का दूसरा कारण यह भी था कि उस समय आज की तरह छापेख़ाने की सुगमताएँ न थीं, इसलिए कहानी अपने साहित्यिक रूप में न आ सकी। जो भी हो, १६ वीं शताब्दी के बाद १६ वीं शताब्दी ही

में हिन्दी गद्य को कुछ उत्तेजना मिली। कारण यह था कि मुग़ल-साम्राज्य समाप्त हो गया था; ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रभुत्व में छापेखाने खुल गए थे; हिन्दुओं को भी अपनी भाषा को पुनर्जीवित करने की इच्छा थी; इस लिए गद्य के विकास के परिणाम स्वरूप कहानी का आविर्भाव हुआ। १६ वीं शताब्दी में जिन लोगों ने हिन्दी कहानी साहित्य के पौधे को सींचा उनके नाम मुंशी सदासुख, सैयद इंशा अल्लाह खां, लल्लूलाल जी और बाबू देवकीनन्दन खत्री हैं।

'चौरासी तथा दो सौ वैष्णव वार्ता' गद्य निर्माण की दृष्टि से न लिखी गई थी, इसलिए कहानी का यह अत्यन्त ही अपरिपक्व रूप था। मुंशी सदासुख के 'सुख सागर' की भाषा भी कथावाचकों सी है। हाँ इंशा अल्ला खां द्वारा लिखित 'रानी केतकी की कहानी' की भाषा बड़ी चुलबुली सरल और हृदयग्राही है। लल्लूलाल जी आगरे के फोर्टविलियम कालेज के अध्यापक थे। इनका 'प्रेमसागर' आरम्भिक काल के गद्य का एक उत्तम ग्रन्थ समझा जाता है। इसमें भागवत के दशम स्कन्ध की कथा वर्णित है।

इन आरम्भिक कहानियों की भाषा पद्यमय है। हिन्दी गद्य को आधुनिक रूप देने वालों में 'सदल मिश्र' का स्थान बहुत ऊँचा है। मिश्र जी की पद-योजना सीधी साधी है। 'नासिकेतोपाख्यान' में उस प्रकार का वाग्जाल तथा भाषा

की वैसी तोड़ मरोड़ नहीं, जैसी लल्लूलाल के प्रेमसागर में आद्योपान्त भरी पड़ी है।

इन आरम्भिक रचनाओं और 'हरिश्चन्द्र युग' में संस्कृत से जो अनुवाद हुए, उन्हें देखकर एक बात का आभास अवश्य मिलेगा और वह यह कि वे सब के सब प्रायः अध्यात्म-विषयक थे। मनोरंजकता उनमें थी, पर उनका बड़ा गुण उनका अध्यात्म-विषयक होना था। यों भी, जैसा कि हमने कहा, प्राचीन कहानियां, घटनाओं के कहने, या मानव जीवन के रहस्यों पर प्रकाश डालने के लिए उतनी नहीं लिखी जाती थीं जितनी धर्म प्रचार के लिए। ब्राह्मण, उपनिषद, महाभारत आदि में ऐसी ही कहानियां विद्यमान हैं। बाइबल में दृष्टान्तों और आख्यायिकाओं द्वारा ही धर्म के तत्व समझाए गये हैं। हिन्दी की आरम्भिक कहानियां भी ऐसी ही थीं। चाहे वे गद्य की हों व पद्य की।

कहानी को कहानी के लिए, मनोरंजकता के लिए, लिखने का श्रेय हिन्दी में बाबू देवकीनन्दन खत्री को है और इस उद्देश्य के लिए पुराने कहानी कहने वालों की भाँति उन्होंने अपनी रचनाओं को कौतूहल प्रधान बनाया। 'चन्द्रकान्ता', 'भूतनाथ', 'वीरेन्द्र वीर' और 'कुसुम कुमारी' आदि उपन्यास इसी तरह के हैं और इतने दिलचस्प, कि आज भी चाव से पढ़े जाते हैं।

यहां एक बात ध्यान देने योग्य है। चन्द्रकान्ता संतति तथा इसी प्रकार की कौतूहल-प्रधान कहानियां हर उम्र में नहीं पढ़ी जातीं। जीवन में एक समय आता है, जब सब कुछ सुनहला दिखाई देता है। कोई ग़म नहीं, दुख नहीं, उत्तरदायित्व का बोझ नहीं, तब ऐसी चीजें पढ़ने में मन लगता है।

पर ज्यों ही हम, जीवन की यथार्थताओं के संघर्ष में आते हैं, स्वप्न जब हमारे स्वप्न नहीं रहते, तभी हम ऐसी कहानियों से ऊब उठते हैं। तब हम कोई ऐसी चीज़ चाहते हैं, जो हमारे सामने जीवन की यथार्थता को खोल कर रख दे; हमारे सुख दुखों का दिग्दर्शन कराए; हमारी विपत्तियों में हमें सान्त्वना दे; हमारी कठिनाइयों में हमारा पथ प्रदर्शन करे; हमें जीवन को, मानव को, समझने में सहायता दे। साहित्य के जीवन में भी जिस समय यह कौतूहल-पूर्ण, मनोरंजन-मात्र का या धर्म का पहलू लिए हुए, कहानियां लिखी गईं, तब जीवन संघर्ष अपेक्षा-कृत कम जटिल था; आजीविका का प्रश्न भी आज ऐसा विकट न था; लोगों के पास समय भी काफ़ी था, तब लोग बैठे धर्म-ज्ञान की चर्चा कर सकते थे, कौतूहल पूर्ण कहानियां पढ़ और सुन सकते थे। पर आज, जब धर्म में, आत्मा परमात्मा तक में, लोगों की

उतनी आस्था नहीं रही; जब जीवन-संघर्ष ने सपने देखने वाले युवक को एक दम प्रौढ़ बना दिया है और आजीविका कमाने की चिन्ता ने उसके पास समय नहीं छोड़ा, यह आवश्यक था कि पुरानी कौतूहलपूर्ण लम्बी-लम्बी कहानियों का स्थान छोटी भावपूर्ण, जीवन से मेल खाने वाली कहानियां लेतीं। अब तक हम कहानी को उसके व्यापक अर्थ में लेते रहे हैं, जिसमें साधारण छोटी घटना से लेकर 'चन्द्रकान्ता-संतति' तक भी कहानी है, पर यहां से छोटी कहानी नाम की एक नई चीज़ आती है, जो अपनी पृथक् कला रखने के साथ ही आज की आवश्यकताओं के अनुसार है।

The best novel ever found in Hindi literatu

"हमें यह मानने में संकोच न होना चाहिए कि छोटी छोटी कहानियां लिखने की यह कला हमने यूरोप से ली है। कम से कम इसका आज का विकसित रूप तो पश्चिम का ही है। यह माना कि हमारे यहां प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी कहानी थी, पर अनेक कारणों से जीवन की अन्य धाराओं की भाँति साहित्य में भी हमारी प्रगति रुक गई। हमने प्राचीन से जौ भर इधर-उधर हटना भी निषिद्ध समझ लिया। साहित्य के लिए प्राचीनों ने जो मर्यादाएं बाँध दी थीं उनका उल्लंघन करना वर्जित था; अतएव काव्य और नाटक की भाँति कथा में भी हम आगे न बढ़ सके। कोई वस्तु बहुत सुन्दर होने पर भी अरुचिकर हो जाती है, जब तक उस में कुछ

नवीनता न लाई जाए। एक ही तरह का काव्य, एक ही भाँति के नाटक पढ़ते पढ़ते आदमी थक जाता है और वह नई चीज़ चाहता है, चाहे वह उतनी सुन्दर और उत्कृष्ट न हो। हमारे यहां या तो यह इच्छा उठी ही नहीं, या हमने उसे इतना कुचला कि जड़ीभूत हो गई। पश्चिम प्रगति करता रहा। उसे नवीनता की भूख थी और मर्यादाओं की बेड़ियों से चिढ़! जीवन के प्रत्येक विभाग में उसकी इस अस्थिरता की, असंतोष की, बेड़ियों से मुक्त हो जाने की छाप लगी हुई है। साहित्य में भी उसने क्रान्ति मचादी। शेक्सपियर* के नाटक अनुपम हैं। पर आज उन नाटकों का जनता के जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं। आज के नाटक का उद्देश्य कुछ और है, आदर्श कुछ और है, विषय कुछ और है, शैली कुछ और है। कथा-साहित्य में भी विकास हुआ और उसके विषय में चाहे उतना बड़ा परिवर्तन न हुआ हो, पर शैली तो बिलकुल ही बदल गई। अलफ़लैला उस समय का आदर्श था उसमें बहुरूपता थी, वैचित्र्य था, कौतूहल था, रोमांस था, पर उसमें जीवन की समस्याएं न थी, मनोविज्ञान के रहस्य न थे, अनुभूतियों की इतनी प्रचुरता न थी, जीवन अपने सत्य रूप में इतना स्पष्ट न था।"

---

* अंग्रेज़ी भाषा का प्रख्यात नाटककार।

ऊपर का लम्बा उद्धरण मैं ने स्व० प्रेमचन्द के लेख से दिया है। हिन्दी साहित्य के महारथियों में वे ही पहले आदमी थे जिन्हों ने इस सत्य को जाना और हिन्दी को आज की ज़रूरतों के अनुसार कहानियां दीं। उनसे पहले 'सरस्वती' तथा 'इन्दु' में कुछ लेखकों की सुन्दर कहानियां निकलीं पर उनकी गिनती नहीं के बराबर है। श्री विश्वम्भर नाथ कौशिक श्री ज्वालादत्त शर्मा, श्री जिज्जा, राजा राधिकारमण सिंह तथा स्व० जयशंकर प्रसाद की कोई कोई कहानी मिलती है, पर स्व० प्रेमचन्द ने उनसे बहुत पहले उर्दू में लिखना आरम्भ कर दिया था, यद्यपि हिन्दी में वे १९१६ में आए। पढ़ने को, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है, उन्होंने 'चन्द्रकान्ता सन्तति' और 'फिसानाए आज़ाद' पढ़ा था, पर उनके अन्दर सृजन करने की जो शक्ति तड़प रही थी वह अनुकरण मात्र से संतुष्ट न रह सकती थी। वर्त्तमान युग की ज़रूरतों को समझते हुए साहित्य के इस प्रौढ़ व्यक्ति के मन ही की चीज़ उन्होंने उसे देने का प्रयास किया।

वर्त्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण और जीवन के यथार्थ स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। मनुष्य के लिए मनुष्य ही सब से विकट पहेली है। वह स्वयं अपनी समझ में नहीं आता। किसी न किसी रूप में वह अपनी ही आलोचना किया करता है, अपने ही मनोरहस्य

खोला करता है । मानव-संस्कृति का विकास ही इसी लिए हुआ कि मनुष्य अपने आपको समझे। प्राचीन काल में धार्मिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियां मनुष्य को आत्मा और परमात्मा के झगड़ों में व्यस्त रखती थीं। धर्म और कर्म से पृथक् मान कर, अपने आप को समझने की प्रवृत्ति उसमें न थी, फिर अपने पड़ौसी को, समाज को समझने की तो बात ही दूर रही। पर आज का मनुष्य अपने आपको, अपने पड़ौसी को, अपने समाज को समझने के लिए सतर्कता से प्रयत्न-शील है इस लिए उसकी कहानियां मनोवैज्ञानिक-सत्य और जीवन यथार्थ अनुभूतियों पर अवलम्बित हैं।

मनोवैज्ञानिक-सत्य क्या है ? इसके दो एक उदाहरण स्व० प्रेमचन्द ने अपनी एक पुस्तक की भूमिका में दिए हैं।

"साधु पिता का अपने कुव्यसनी पुत्र की दशा से दुखी होना मनोवैज्ञानिक-सत्य है"। इस आवेग में पिता के मनोवेशों को चित्रित करना आजकल के कहानीकार का उद्देश्य है।

"बुरा आदमी भी बुरा नहीं होता। उस में कहीं न कहीं अवश्य देवता छिपा हुआ होता है। यह मनोवैज्ञानिक-सत्य है।" उस देवता को खोल कर दिखा देना आधुनिक युग के कहानी कार का काम है।

"विपत्ति पर विपत्ति पड़ने से मनुष्य कितना दलेर हो जाता है, यहां तक कि वह बड़े से बड़े संकट का सामना करने

के लिए ताल ठोंक कर तैयार हो जाता है; उसकी सारी दुर्वासना भाग जाती है; उसके हृदय के किसी गुप्त स्थान में छिपे हुए जौहर निकल आते हैं और हमें चकित कर देते हैं, यह मनोवैज्ञानिक-सत्य है" आज का कहानीकार मात्र-कल्पना पर अपनी कहानी की भित्ति खड़ी न कर के किसी ऐसे ही मनोवैज्ञानिक-सत्य पर उसकी नींव रखेगा और कला के दूसरे उपकरणों की सहायता से उसमें प्राण प्रतिष्ठा करेगा, सजीवता लाएगा।

मानव-जीवन में ऐसे बीसियों मनोवैज्ञानिक-सत्य हैं, एक घटना या दुर्घटना भिन्न भिन्न प्रकृति के मनुष्यों को भिन्न-भिन्न रूप से प्रभावित करती है। कहानीकार यदि अपनी कहानी में इसको सफलता के साथ दिखा सके तो कहानी उच्च कोटि की बनेगी। किसी समस्या का समावेश कहानी को उत्तम बनाने का सब से बड़ा साधन है। नित्य नये दिन जीवन में ऐसी समस्याएं उपस्थित होती रहती हैं और उस से पैदा होने वाला द्वन्द्व आख्यायिका को चार चाँद लगा देता है।

"न्याय-प्रिय जज को मालूम होता है कि उसके पुत्र ने किसी व्यक्ति की हत्या की है—वह उसे न्याय की वेदी पर बलिदान कर दे या अपने जीवन के सिद्धान्तों की हत्या कर डाले? कितना भीषण द्वन्द्व है! पश्चात्ताप ही ऐसे द्वन्द्वों का अखंड-स्रोत है। एक भाई ने अपने भाई की सम्पत्ति छल कपट से

अपहरण कर ली है, उसे गिड़गिड़ा कर और अवधि माँगते देख कर क्या उस क्रूर के मन में तनिक भी पश्चात्ताप न होगा? यदि ऐसा न हो तो वह मनुष्य नहीं।"

अब हम ज़रा उस घटना को लें, जिसका ज़िक्र हमने इस प्राक्कथन के आरम्भ में किया है। उस घटना को यदि वह शिकारी उसी तरह वर्णन कर देगा, तो वह मात्र एक घटना का वर्णन ही रह जायगा, कहानी न बनेगी। अब यदि उस घटना में किसी मनोवैज्ञानिक सत्य का समावेश कर दिया जाए—जब शिकारी उस हिंस्र पशु को मार लेता है, तो उसे मालूम होता है कि वह मादा है और उसके मरने के साथ उसके बच्चे भी मर गए हैं। तब अपने इस कृत्य पर उस दुर्दान्त व्यक्ति के मन में भी, मनुष्य होने के नाते, जो पश्चात्ताप होता है, यदि उसका ज़िक्र भी वह अपने साथियों से करे, तो वही घटना मात्र-घटना न रह जाएगी, उसमें काफ़ी कहानीपन आजाएगा और यदि आज का कोई कुशल कहानीकार उस पश्चात्ताप को लेकर कहानी लिखेगा और उस घटना का उस शिकारी के हृदय पर जो प्रभाव पड़ा और जिस प्रकार उस घटना ने उसके जीवन के रुख़ को पलट दिया, उसका ज़िक्र करेगा तो वह एक बहुत सुन्दर कहानी बन जाएगी—मनोविज्ञान और यथार्थ-सत्य का पहलू लिए हुए।

कहानी की कला

पिछले सौ वर्षों में कहानी कला ने निश्चित रूप धारण कर लिया है। जिस प्रकार नाटक और उपन्यास की अपनी अपनी कला है, इसी प्रकार अब कहानी की भी अपनी निश्चित कला है। यह ठीक है कि सौ वर्ष पहले तो स्वयं यूरोप भी इस कला से अनभिज्ञ था। उच्च कोटि के सामाजिक, ऐतिहासिक तथा दार्शनिक उपन्यास लिखे जाते थे, छोटी कहानियों की ओर किसी का ध्यान नहीं था। हाँ, भूतों और परियों की कहानियां लिखी जाती थीं, पर इसी एक शताब्दी में, बल्कि इस से भी कम समय में छोटी कहानी ने साहित्य के और सभी अंगों पर विजय प्राप्त कर ली है और स्व० प्रेमचन्द के कथनानुसार यह कहना अत्युक्ति नहीं कि जैसे किसी ज़माने में कवित्त ही साहित्यिक अभिव्यक्ति का व्यापक रूप था वैसे ही आज कहानी है और उसे यह गौरव प्राप्त हुआ है यूरोप के कितने ही महान कलाकारों के उर्वर मस्तिष्क और अथक परिश्रम के कारण। हिन्दी में भी यद्यपि पैंतीस छत्तीस वर्ष पहले आज की गल्प को कोई जानता भी न था, पर आज कोई ही ऐसी पत्रिका होगी, जिसमें एक दो कहानियां न दी जाती हों और हिन्दी कहानी को एक दम अज्ञात स्थान से निकाल इतने ऊँचे शिखर पर पहुँचा देने का श्रेय स्व० प्रेमचन्द को है।

परिभाषा

छोटी कहानी क्या है ? इस सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता कि साहित्यिक भावव्यंजना का यह सबसे ठीक और संतोष-जनक साधन है।

एक अंग्रेज़ लेखक की राय में 'कहानी एक पात्र के जीवन की वह महत्त्व-पूर्ण घटना है जिसकी संक्षेप में नाटकीय ढंग से अभिव्यंजना की गई हो।

एक दूसरे लेखक का मत है कि—कहानी संकट या उलझन में पड़े हुए पात्रों का कलापूर्ण वर्णन है, जिसका कोई निश्चित परिणाम हो।

एक तीसरे आलोचक का कहना है कि—कहानी किसी घटना के सुन्दर ढंग पर वर्णन करने का नाम है।

इसी तरह विविध आलोचकों ने अपने अपने मतानुसार कहानी की विभिन्न परिभाषाएं की हैं। हिन्दी में भी कहानी क्या है ? यह बताने का प्रयास किया गया है। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का मत है कि—घटनात्मक इकहरे चित्रण का नाम कहानी है और साहित्य के सभी अंगों के समान रस उसका आवश्यक गुण है।

दूसरे लेखकों ने कहानी की लम्बाई तथा दूसरे लक्षणों के विचार से उसकी सीमाएं निर्धारित करने का प्रयास किया है। हम कहानी को परिभाषाओं की ज़ंजीरों में बाँधने के पक्ष में नहीं। समय समय पर कहानी की परिभाषाएं बदलती

रही हैं। कल जो कहानी लिखी जाती थी, आज नहीं लिखी जाती और कौन जानता है कि हम आज की कहानियों के अनुसार लघु-कथा की जो परिभाषा देते हैं वह कल के समाज को ग्राह्य होगी या नहीं ? आरम्भ में किसी घटना को उत्तम ढंग से वर्णन करने को ही कहानी कहते थे। आज तक घटना एक तरह की कहानियों का मुख्य अंग रही है और अब भी है, किन्तु स्व० प्रेमचन्द जी के शब्दों में—गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है। कितनी ही ऐसी कहानियां हैं, जिन में घटना इतनी प्रधान नहीं जितना चरित्र-चित्रण या वातावरण। तब कहानी को केवल घटनात्मक इकहरा चित्रण कह कर हम किस तरह संतुष्ट हो बैठ सकते हैं।

श्री इलाचन्द्र जोशी ने लिखा है—वर्तमान युग की छोटी कहानी एक प्रकार की गद्य-कविता है, जो वास्तविक जीवन के आधार पर खड़ी होती है। जीवन का चक्र नाना परिस्थितियों के संघर्ष से उल्टा सीधा चलता रहता है। इस सुवृहत चक्र की किसी विशेष परिस्थिति की स्वाभाविक गति को प्रदर्शित करने में ही कहानी की विशेषता है।

जोशी जी कवि हैं। वह कहानी को भी कविता के रूप में देखते हैं, किन्तु यदि मानव-जीवन के कटु-सत्य पर अवलम्बित वह आज की कुछ ऊँचे दर्जे की कहानियों को देखें तो वह पाएँगे कि काव्य से उनका ३६ का नाता भी नहीं। जीवन संघर्ष के

चित्रण में कविता कहां ? कविता कल्पना है और यथार्थता कहानी—यही बात आज के लेखक अपनी गल्पों द्वारा प्रदर्शित करने का प्रयास कर रहे हैं।

इस पर भी जोशी जी का कथन बहुत से अंशों में सत्य है। कल क्या होगा इसे कौन जानता है पर कहानी की आज की धारा को देख कर हम कह सकते हैं कि--

> आधुनिक छोटी कहानी एक ऐसी रचना है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक-सत्य या मानव-जीवन अथवा समाज की किसी समस्या पर रखा गया हो। और जो बिना इधर उधर भटके अपने ध्येय पर पहुँच जाए। और यदि उस में कोई घटना वर्णित है तो उसका चित्रण इकहरा और रस पूर्ण हो।

कहानी की यह परिभाषा मेरे विचार में काफ़ी व्यापक है। इसमें घटना प्रधान; मनोवैज्ञानिक सत्य पर अवलम्बित या जीवन की किसी वास्तविक घटना पर आश्रित सब प्रकार की कहानियां आ सकती हैं, इसके साथ ही अच्छी कहानी के सब से बड़े गुणों—रस (दिलचस्पी) और कथानक के गठन का निर्देश भी इस में कर दिया गया है।

इस रस तथा दिलचस्पी को, जो एक विद्वान् समालोचक के मतानुसार कहानी की जान है, प्राप्त करने के लिए कुछ आवश्यक उपकरणों की आवश्यकता है जिन का वर्णन संक्षिप्त में नीचे किया जाता है।

11561

कथानक

कहानी घटना प्रधान हो अथवा चरित्र प्रधान, कथानक अथवा प्लाट उसका आवश्यक अंग है। यह दूसरी बात है कि कहीं यह सारी कहानी पर छाया होता है और कहीं वातावरण अथवा चरित्रों के पर्दे में छिपा हुआ; किसी कहानी में वातावरण और चरित्र इसके सामने गौण रूप धारण कर इसके सहायक बनते हैं और कहीं यह स्वयं गौण हो उनका सहायक बन जाता है। किन्तु विचार प्रधान तथा जीवन के किसी दृश्य को लेकर लिखी गई कहानियों को छोड़ कर (अर्थात् उन कहानियों को छोड़ कर जिन में कथानक नहीं, वरन् विशाल जीवन का कोई दृश्य मात्र वर्णित है, जैसे श्री जैनेन्द्र के 'पढ़ाई' या 'जनता') शेष में कथानक के बिना पाठकों का मनोरंजन नहीं हो सकता। रही विचार प्रधान कहानियां, वे प्रत्येक पाठक के लिए होती भी नहीं। विद्वान तथा मननशील पाठक ही उन से लाभ उठा सकते हैं। प्लाट उन में भी नहीं के बराबर होता है। श्री जैनेन्द्र की रानी महामाया, नारद आदि ऐसी ही कहानियां हैं। जीवन के किसी दृश्य को लेकर लिखी जाने वाली कहानियों में भी घटना के नाम पर एक मध्य सी परिस्थिति होती है और उसी का यथार्थ चित्रण इन नाममात्र की कहानियों का गुण है। अन्तिम बिन्दु का वहां सर्वथा अभाव है।

कुछ लोग जो कथानक अथवा घटना को कहानी का मुख्य अंग मानते हैं इनको 'कहानी' का नाम देने के लिए तैयार नहीं। वे इन्हें कहानी और निबन्ध के बीच की चीज़ समझते हैं। कुछ भी हो, इन दो प्रकार की कहानियों को छोड़ कर शेष का 'कथानक' प्रधान अंग होता है।

यहां एक बात और याद रखनी चाहिए और वह यह कि घटना कथानक का पर्यायवाची शब्द नहीं, घटना को यदि बीज कहें तो कथानक फला फूला पौधा है; घटना यदि नींव है तो कथानक उस पर निर्मित भव्य प्रासाद है।

कथानक का महत्व

शरीर के लिए जिस प्रकार ढांचे की आवश्यकता है उसी प्रकार कहानी के लिए कथानक की। जबड़े की हड्डियां न हों तो कितना भी मांस चेहरे को सुन्दर नहीं बना सकता। यही हाल दूसरे अंगों का है। विचार प्रधान अथवा दूसरी तरह की घटना-रहित कहानियां किसी न किसी सूरत में कथानक रखती हैं, चाहे वह दृश्य अथवा परिस्थिति जिस पर कथानक निर्मित है, कितनी भी छोटी अथवा अप्रत्यक्ष क्यों न हो। किन्तु जैसे एक पहलवान के शरीर का ढांचा एक नाचने वाले के ढांचे से अलग होता है। इसी तरह कथानक भी लेखक की इच्छा के अनुसार विभिन्न रूप धारण करते हैं। उसी परिस्थिति से एक लेखक विचार प्रधान कहानी बना देता है, दूसरा घटना

प्रधान, तीसरा चरित्र प्रधान और चौथा वातावरण प्रधान। कथानक के साथ दूसरे उपकरण मिल कर लेखक की इच्छा के अनुसार कहानी तैयार करते हैं। स्मरण रखने योग्य बात यही है कि चाहे कहानी कैसी ही हो कथानक उसका एक मुख्य अंग है। एक समालोचक ने कहा है--यदि सुनाने के लिए कुछ नहीं तो शेष रहा ही क्या ?

कथानक का गठन

आधुनिक कहानी का सब से बड़ा गुण उसके कथानक का गठन है। जैसे हमने ऊपर लिखा, वह सीधी अपने ध्येय की ओर जाती है, इधर उधर नहीं भटकती, रास्ते में किसी प्रकार की रुकावट, अनावश्यक विस्तार, अप्रासंगिक बात-चीत सब उसे असह्य हैं। पंक्ति के साथ पंक्ति, पैरे के साथ पैरा, ऐसे गठा होना चाहिए जैसे ज़ंजीर की कड़ियां। एक पंक्ति उस में से निकाली न जा सके, एक बढ़ाई न जा सके। और प्रवाह उस में नदी का सा होना चाहिए, बस पाठक शुरु करे कि बहता ही चला जाए। कहानी में यह गुण प्लाट के गठन से आता है और प्लाट का गठन कहानी के आरम्भ मध्य और अन्त पर निर्भर है। यहां दो चार शब्द इन तीनों के सम्बन्ध में कह देने ज़रूरी हैं।

इस से पहले कि आरम्भ के सम्बन्ध में कुछ कहा जाए,

एक और उपकरण के सिलसिले में, जिस का सम्बन्ध आरम्भ से है, दो बातें कहनी हम ज़रूरी समझते हैं और वह है कहानी का 'शीर्षक'।

शीर्षक

दिलचस्पी के विचार से, जिसे स्व० प्रेमचन्द ने कहानी की आत्मा कहा है, कहानी का शीर्षक काफ़ी महत्व रखता है, आकर्षक सुन्दर शीर्षक पाठक को एक साधारण कोटि की कहानी पढ़ने के लिए विवश कर सकता है और फुसफुसा तथा कला-हीन शीर्षक एक सुन्दर कहानी को भी पाठक के अध्ययन से वंचित रख सकता है।

आधुनिक काल में उपन्यास की अपेक्षा कहानी के इतनी उन्नति करने का कारण समयाभाव है और इसी समयाभाव के कारण कहानी का शीर्षक और भी महत्व रखता है। साहित्य में दिलचस्पी रखने वाला एक बेकार व्यक्ति शीर्षक की इतनी परवाह न किए बिना भी केवल समय काटने के लिए कहानी पढ़ सकता है पर ज़रा उस व्यक्ति की कल्पना कीजिए जिसके पास उतना समय नहीं, वह तो वही कहानी पढ़ेगा जो उसे पहली दृष्टि में आकृष्ट कर ले। और यहीं शीर्षक महत्व प्राप्त करता है।

कहानी का शीर्षक उत्तेजक, आकर्षक, मनोरंजक,

सांकेतक तथा प्रेरक होना चाहिए ऐसा कि जिसे देखते ही कम से कम पाठक कहानी को पढ़ना शुरू कर दे फिर कहानी के आरम्भ पर है कि वह उसे पकड़ ले, विकास पर है कि उसे अपने साथ वहा ले जाए और अन्त पर है कि उसे मन्त्र-मुग्ध बिठा दे।

भाषण दाताओं के लिए एक पुराना आदेश प्रसिद्ध है—

उठो, भाषण दो और बैठ जाओ। कहानी के
आरम्भ आरम्भ; मध्य और अन्त के लिए भी यही तीनों शब्द उपयुक्त हैं।

'उठो' जिस चुस्ती और स्फूर्ति का द्योतक है वही कहानी के आरम्भ में होनी चाहिए। कहानी की पहली पंक्तियां ही ऐसी हों जो पाठक को पकड़ लें, उन्हें पढ़ते ही पाठक अपने दिल में कहानी के सम्बन्ध में कुछ आशाएं बना ले, कुछ प्रश्न उसके मन में पैदा हो जाएं, कुछ तस्वीरें उसके सामने खिच जाएं।

आरम्भ की पंक्तियां ऐसी हों जो बहुत थोड़े में बहुत कुछ कह जाएं, जो पाठक के कौतूहल को, उसकी उत्सुकता को जगा दें। इस के साथ पहली पंक्तियों से ही पाठक को पता लग जाना चाहिए कि वह कैसी कहानी पढ़ने जा रहा है। उस की कहानी विचार प्रधान है, या घटना प्रधान; देहात से सम्बन्ध रखती है या नगर के जीवन से; काल्पणिक है या

यथार्थ का चित्र! यदि पहले पैरे ने उसे आकृष्ट न किया तो व्यस्त पाठक के लिए यह कठिन है कि वह आगे बढ़े। वह पृष्ठ पलटने लगेगा।

मध्य का विकास

और जब एक बार पाठक कहानी आरम्भ कर ले, और आरम्भ की पंक्तियां उसे पकड़ लें तो उसकी मनोरंजकता को बनाए रखने का कर्तव्य कहानी के मध्यभाग, अथवा विकास पर है। भाषण-करता से जो कहा गया है—भाषण दो–तो उसका अभिप्राय यह है कि वह बिना किसी लम्बी भूमिका के, बिना इधर उधर भटके, व्यर्थ के हेर फेर को छोड़कर सीधा अपने विषय के सम्बन्ध में बोले। कहानी के विकास में कहानी लेखक का भी यही आदर्श होना चाहिए। उसे सतर्क रहना चाहिए कि उसकी आरम्भ की पंक्तियां जो दिलचस्पी अंकुरित कर चुकी हैं, वह अनुकूल आहार न पाने से मुरझा न जाए।

प्रवाह

मध्य भाग का पहला गुण उसका प्रवाह है। यह प्रवाह सब से पहले वर्णन शैली की सुन्दरता से आता है। वर्णन शैली के कई अवयव हैं। भाषा की चुस्ती, उपयुक्त शब्दों तथा मुहावरों का उपयुक्त स्थान पर प्रयोग, वाक्यों की बंदश, ठीक हिस्सों में कथानक की विभक्ति, गठन, अप्रासंगिक शब्दों तथा वाक्यों का बहिष्कार और गहरी अनुभूति--ये सब वर्णन शैली को

वर्णन-शैली बनाते हैं और शैली ही वह चीज़ है जिससे लेखक लेखक में अन्तर का पता चलता है।

संभाषण

विकास में जिस दूसरी बात से खूबी पैदा होती है, वह संभाषण है। वास्तव में यह वर्णन-शैली का ही एक अंग है। संभाषण से कहानी में चुस्ती और नवीनता पैदा होती है। यदि कहानी एक ही तरह चली जाए तो हो सकता है कि पाठक ऊब जाए। उपयुक्त अवसर पर चन्द वाक्य कथानक में जान पैदा कर देते हैं। संभाषण सजीव, संक्षिप्त और प्रासंगिक होने चाहिएं। कुछ कहानी लेखक तो संभाषण ही से कहानी का आरम्भ, विकास, चरित्र-चित्रण तथा अन्त करते हैं। हिन्दी में 'कौशिक' जी की कहानियां अपने संभाषण के लिए प्रसिद्ध हैं। प्रेमचन्द की कहानी में संभाषण अत्यन्त सजीव होते हैं। आधुनिक कहानी में संभाषण को काफी ऊँचा दर्जा प्राप्त है।

चरित्र-चित्रण

इसके अतिरिक्त एक और गुण भी है जो साधारणतया कहानी के इस विकास में ही पैदा किया जाता है और वह है चरित्र-चित्रण। केवल घटना-प्रधान कहानियों को छोड़ कर जीवन की अनुभूतियों पर निर्भर शेष सब कहानियों की कसौटी चरित्र-चित्रण ही है। बहुत सी कहानियां ऐसी हैं जो अपने उत्तम चरित्र-चित्रण के कारण आज तक प्रसिद्ध हैं। ऐसे लेखक भी

कम नहीं, जिनका नाम अब तक केवल इसी लिए अमर है कि उन्होंने कुछ अमर चरित्र खींचे। उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द का कमाल, सीधी-सरल भाषा लिखने, अलंकारों और उपमाओं का उचित प्रयोग करने में उतना नहीं, जितना होरी, सूरदास, प्रेमशंकर, ज्ञानशंकर ऐसे चरित्र पेश करने में है और यदि साहित्य में उनका नाम अमर रहा तो यह इन्हीं चरित्रों के कारण होगा।

चरित्र-चित्रण तभी सफल कहा जा सकता है जब लेखक अपनी इच्छा के अनुसार पाठकों के मन में किसी पात्र के प्रति सहानुभूति, प्रेम तथा उपेक्षा पैदा कर सके, जो स्मृति पट से मिटाए न मिटे।

वर्णन-शैली का एक गुण वातावरण पैदा करना भी है।

वातावरण

शब्द-योजना, वाक्य-विन्यास और वर्णन के ढंग से वातावरण पैदा किया जाता है। कुछ कहानियां वातावरण-प्रधान होती हैं। उन में लेखक ऐसा वातावरण पैदा कर देते हैं कि पाठक अपने आपको भूलकर उनमें गुम हो जाता है। रस से वातावरण कुछ भिन्न है। कहानी को पढ़ते-पढ़ते किसी घटना, स्थान, अथवा दृश्य का वर्णन लेखक इस तरह करता है कि पाठक पर आतंक छा जाता है, या उसका हृदय धड़कने लगता है, या उसे रोमांच हो आता है और उसे भूल जाता है कि वह कुछ पढ़ रहा है; ज्ञान किसी चीज़ का उसे नहीं रहता और कहानी

Sri Pratap Singh Library

का वातावरण उसकी नस नस पर भी छा जाता है। रस महसूस करने की, आनन्द उठाने की चीज़ है और रसमें ज्ञान ज़रूरी है। वातावरण का गुण विस्मृति है। मरने के बाद अशान्त रहने वाली आत्माओं की कहानियों में, खून, डाके और चोरी की दास्तानों में, यथार्थता से दूर, रोमांस की कथाओं में प्रायः वातावरण की प्रधानता होती है।

अन्तिम बिन्दु

अब रहा दिलचस्पी का क्षण-प्रतिक्षण बढ़ते जाना—यह बात कहानी में जिन उपकरणों की सहायता से पैदा की जाती है उनमें पहला स्थान 'कथानक की अनिश्चित धारा' और 'अन्तिम बिन्दु' को प्राप्त है। कथानक जिस स्थल में अपने चर्मोत्कर्ष पर होता है, उसे 'अन्तिम बिन्दु' कहते हैं। कथानक की दिलचस्पी के लिए यह आवश्यक है कि अन्तिम बिन्दु अन्त के समीप हो, क्योंकि अन्तिम बिन्दु के बाद दिलचस्पी घटनी आरम्भ हो जाती है। आरम्भ के बाद अन्तिम बिन्दु तक पाठक की उत्सुकता, उसकी अनिश्चितावस्था बनी रहनी चाहिए। आगे क्या होगा, आगे क्या होगा, ऐसा ही उसका मन सोचता रहे, कि अन्त आ जाए।

अन्त

कहानी का अन्त उतना ही महत्व रखता है, जितना कि मध्य तथा आरम्भ। यदि आरम्भ ठीक तथा स्वाभाविक है, मध्य या विकास भी संतोषजनक है, पर अन्त

सर्वथा अस्वाभाविक है, तो पाठक असंतुष्ट हो पुस्तक पटक देगा। इसलिए आवश्यक है कि अत्यन्त अप्रत्याशित होते हुए भी कहानी का अन्त स्वाभाविक हो, जीवन से मेल खाए, सम्भाव्य हो, असम्भव न हो। जिसे पढ़ने के बाद पाठक यह न कहे कि ऐसा हो ही नहीं सकता, बल्कि उसका मन कहे कि ऐसा हो सकता है।

अन्त पर जाकर पाठक को संतोष मिलना चाहिए। उसे महसूस होना चाहिए कि कहानी पर उसने जो इतना समय लगाया है, वह व्यर्थ नहीं गया। यदि कहानी हास्य-रस की है तो पाठक का हृदय अन्त पर कहकहा मार उठे; दुख की है तो रो उठे; विस्मयजनक है, तो आश्चर्यान्वित रह जाए; लोमहर्षक है, तो उसे रोमांच आ जाए।

कुछ कहानियां ऐसी होती हैं जो अपने अन्त के कारण पाठक के मन में अंकित हो जाती हैं। स्व० प्रेमचन्द जी की कहानियां—शतरंज के खिलाड़ी, बालक, गुल्ली-डंडा, नशा, रसिक सम्पादक ऐसी ही कहानियां हैं, जो अन्त में दी गई एक या दो पंक्तियों के कारण ही पाठक के स्मृति-पट पर अमिट छाप स्थापित कर जाती हैं।

लम्बाई

अंग्रेज़ी साहित्य के आरम्भिक काल के एक प्रसिद्ध कहानीकार ने कहानी की एक बड़ी ही अपूर्ण परिभाषा करते हुए कहा था--कहानी उस चीज़

को कहते हैं जो आधे घंटे से लेकर डेढ़ घंटे तक आसानी से पढ़ी जा सके।

आधुनिक युग के एक महान अंग्रेज़ लेखक ने अभी एक जगह कहानी की परिभाषा देते हुए उसे ऐसी ही सीमाओं में बाँधने का प्रयास किया है—छोटी कहानी एक कल्पित रचना है जो एक घंटे के अन्दर अन्दर पढ़ी जा सके, पढ़ने में दिलचस्प हो और उसमें प्रवाह काफी हो।

किन्तु कहानी को किसी भी ऐसी सीमा में बाँधा नहीं जा सकता। साधारण अच्छी कहानी के लिए ऐसी सीमा चाहे निर्धारित कर दी जाए, पर इसे नियम नहीं बनाया जा सकता। बंगाल के प्रसिद्ध कलाकार शरत बाबू की कुछ कहानियां—सुमति, बिन्दो का लड़का, बड़ी दीदी काफी लम्बी हैं; स्व० प्रेमचन्द की कहानियां—बेटों वाली विधवा, सोहाग का शव, डामुल का कैदी, फातिहा बड़ी कहानियां हैं; जैनेन्द्र जी की स्पर्धा तथा फांसी भी लम्बाई में कम नहीं।

कहानी की कसौटी लम्बाई नहीं वरन् कथानक का गठन तथा लक्ष्य का सीधा रहना है। यदि कहानी आरम्भ से अन्त तक, बिना इधर उधर भटके, पात्र के जीवन की किसी घटना का इकहरा चित्रण, बिना मनोरंजकता की हत्या किए, पेश करती है, तो चाहे वह १००पृष्ठ तक की भी क्यों न हो, वह लघु-कथा है, अन्यथा नहीं।

इससे पहले कि 'कहानी और उपन्यास में जो अन्तर है' उस के सम्बन्ध में कुछ लिखा जाए यहां हम एक बात स्पष्ट देना चाहते हैं । ऊपर अच्छी कहानी के जो गुण अथवा लक्षण दिए गए हैं, यह आवश्यक नहीं कि एक ही कहानी में वे सब पाए जाएं । वे ऐसे उपकरण हैं जिनकी सहायता से कहानी लेखक अपनी रचना को सुन्दर बनाता है । यह सब उसकी इच्छा और कुशलता पर निर्भर है कि वह किस कहानी में किस उपकरण की सहायता लेता है । कुछ कहानियां घटना-प्रधान, कुछ वातावरण-प्रधान, और कुछ चरित्र-प्रधान होती हैं और कुछ केवल इस लिए सुन्दर होती हैं कि उनकी भाषा बड़ी ओजमयी, सुन्दर और लालित्य-पूर्ण होती है। एक से अधिक उपकरणों की सहायता से अपनी कहानी में एक साथ कई गुण पैदा कर देना, अत्यन्त निपुण कलाकारों का ही काम है।

कहानी और उपन्यास

कुछ लोग यह समझ बैठे हैं कि कहानी उपन्यास का संक्षिप्त रूप है, अथवा वह उपन्यास का ढांचा है । यह धारणा सर्वथा भ्रमपूर्ण है।

कहानी लेखक अपनी कहानी का आधार एक घटना अथवा कुछ घटनाओं पर रखता है । पर उपन्यास में ऐसी बीसियों घटनाएं, केवल आकस्मिक अथवा आनुषंगिक रूप से

आ सकती हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि एक कहानी और एक उपन्यास का एक ही 'उद्देश्य' नहीं हो सकता। जिस प्रकार विविध विटपों से विभूषित उद्यान और एकान्त में खड़ा अकेला पेड़ एक ही धरती से अपनी खुराक लेते हैं, पर दोनों में विशाल अन्तर है, इसी प्रकार एक ही उद्देश्य से पलने वाले उपन्यास और कहानी में भी भारी भिन्नता है।

एक उदाहरण देकर हम अपनी बात को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

कोई व्यक्ति ऐसे विद्वान् वैद्य का चरित्र-चित्रण करना चाहता है, जो अपने काम में बड़ी निपुणता रखता है और जिस के हाथ में परमात्मा ने निरोग करने की शक्ति और मस्तिष्क में प्रखर बुद्धि दी है, किन्तु जन्म-जात उसका लोभ उसके मार्ग की बाधा बन जाता है और इस लिए वह लोगों का इतना उपकार नहीं कर सकता।

अब यदि वह व्यक्ति उपन्यास लेखक है, तो वह अपने उपन्यास को तब से आरम्भ कर सकता है, जब कि भावी वैद्य अभी बच्चा ही है। वह उसके पिता का चरित्र भी खींच सकता है, जो लोभी, कंजूस और मितव्ययी है और चाहता है कि ये 'गुण' उसके पुत्र में भी पैदा हो जाएं; पाठशाला, स्कूल और कालिज में उसकी आदतों का वर्णन कर सकता है; और उसकी पहली प्रेकटिस का भी ज़िक्र कर सकता है। उसी उपन्यास

में वह उसके प्रेम की उपकहानी बयान कर सकता है; बता सकता है कि किस प्रकार धन की ख़ातिर उसने उस प्रेम को ठुकरा दिया। वह उसके एक भाई का चरित्र खींच सकता है, जो उसके विपरीत उदाराशय है; उस उदाराशय भाई के प्रति उसकी उपेक्षा दिखा सकता है और यदि चाहता है कि अन्त में पाठकों के हृदय में उसके लिए सहानुभूति पैदा हो जाए तो कोई ऐसी घटना दे सकता है, जिससे उसके हृदय को ठोकर लगे और वह प्रायश्चित्त करे और उस जीवन की झाँकी भी दिखा सकता है, जब कि उसमें इतना अन्तर आ गया है कि रुपया उसके लिए महत्व की चीज़ नहीं रहा और वह घूम घूम कर देहात में दवाई बांटता है।

पर कहानी लेखक तो ऐसा नहीं कर सकता। उसे उस वैद्य के जीवन की एक ही घटना, केवल एक ही अवस्था लेनी है और उसी का कला-पूर्ण वर्णन करके उसके चरित्र को, उसके विचारों को पाठकों के सामने रखना है। और इसी में पाठक को कुछ क्षणों के लिए अपना आप भुला देना है।

इस सूरत में सम्भवतः वह वहां से आरम्भ करेगा, जब उक्त वैद्य को किसी पार्टी में सम्मिलित होने का निमन्त्रण आता है और बताएगा कि किस प्रकार वैद्य को सोसाइटी में ऊँचा दर्जा प्राप्त है और किस प्रकार उसकी ख्याति उसके नगर की सीमाओं को पार करके प्रान्त भर में फैल चुकी है। उस

सभा में जाने के लिए वह बहुत उत्सुक है, क्योंकि वहां एक ऐसे लखपति से उसका परिचय होने की सम्भावना है, जिस का रोग असाध्य हो गया है और उसके एक मित्र ने उसे उससे मिलाने को कहा भी है। तब उस शाम को, जब वह उस सभा के लिए तैयार होकर जाने लगता है, एक ग़रीब अहीरन अपने मरणासन्न इकलौते बच्चे को गोद में लिए उसे दिखाने आती है और उससे दया की भीख माँगती है……
……………

इस सरल सी घटना में उतना ही नाटक, कौतूहल, उत्सुकता, विस्मृति पैदा की जा सकती है जितनी एक बड़े सहस्र पृष्ठों पर बिखरे हुए उपन्यास में। आवश्यकता केवल लेखक के उर्वर मस्तिष्क की है।

उपन्यास में कई नस्लों, देशों, द्वीपों, महाद्वीपों का वर्णन, बिना उपन्यास की सीमाओं का उल्लंघन किए, किया जा सकता है। बीसियों पात्र एक साथ वहां आ सकते हैं—जैसे स्व० प्रेमचन्द की रंगभूमि तथा प्रेमाश्रम में! कहानी में यह निबड़ता नहीं चलती। कहानी और उपन्यास में जो अन्तर है उसे स्व० प्रेमचन्द ने बड़ी सुन्दरता से एक जगह दिखाया है।

'गल्प एक रचना है जिससे जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य होता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-

विन्यास, सब उसी एक भाव का पुष्टीकरण करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानव-जीवन का सम्पूर्ण तथा बृहद् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता। न उपन्यास की भाँति उसमें सभी रसों का सम्मिश्रण होता है। वह रमणीक उद्यान नहीं, जिसमें भाँति भाँति के फूल, बेल बूटे सजे हुए हैं, बल्कि एक गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है।

हिन्दी में आज सब तरह की कहानियां लिखी जाती हैं। हमने इस संग्रह में जो कहानियां इकट्ठी की हैं, वे इस विचार से नहीं रखीं कि हिन्दी में सबसे अच्छी यही कहानियां हैं। राष्ट्र-भाषा के विशाल क्षेत्र में इनसे अच्छी अनेकों कहानियां मिल सकती हैं। हमारा उद्देश्य मात्र उन धाराओं का दिग्दर्शन कराना है जिनमें, हिन्दी-कहानी-साहित्य बह रहा है और हम विनय-पूर्ण-अभिमान के साथ कह सकते हैं कि हमने यह प्रति-निधि संग्रह उपस्थित करने का प्रयास किया है। एक दो उच्च कोटि के लेखकों को जो अनिच्छा-पूर्वक हम नहीं दे सके, उसका कारण यह है कि जिस श्रेणी के पाठकों के लिए यह संग्रह तैयार किया गया है, वे उन तक, तथा उनके विचारों तक नहीं पहुँच सकते। उन लेखकों की सुन्दर कहानियां विचार-प्रधान हैं और भाषा भी उन की उस श्रेणी के लिए कठिन है।

स्व० प्रेमचन्द

'आधुनिक हिन्दी कहानी के जन्म-दाता' यदि हम प्रेमचन्द को कहें तो उसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं। स्व० प्रेमचन्द के पहले कहानी अपने प्राचीन जीर्ण-शीर्ण आवरण में लिपटी पड़ी थी—विस्मृति के अंधकार में छिपी और मृत प्रायः! प्रेमचन्द ने उसे नव-जीवन प्रदान कर, नूतन पोशाक में आवृत करके नए रूप से जनता के सामने रखा।

प्रेमचन्द की कहानियां, सरस, भावपूर्ण और मानव-जीवन की गहरी अनुभूतियों पर अवलम्बित होती हैं। आपको उन में कोई न कोई मनोवैज्ञानिक-सत्य, जीवन का कोई न कोई यथार्थ चित्र, समाज की कोई न कोई समस्या मिलेगी। मनोविज्ञान का गहरा अध्ययन उन्हें था। उनकी कहानियां पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है, जैसे हम अपने आप को पढ़ रहे हैं। शैली सुन्दर, भाषा चुस्त, मुहावरेदार और लालित्यमयी—जो कुछ लिखते उसका जीता जागता चित्र सामने खींच देते। देहातियों की दयनीय दशा, उनकी कठिन परिस्थितियों, उनकी विकट समस्याओं का जो दिग्दर्शन हमें प्रेमचन्द के यहां मिलता है, कहीं नहीं मिलता। यदि हम उन्हें देहातियों का कहानीकार कहें तो अनुचित न होगा। देहात में उनकी आत्मा बसती थी कदाचित इसलिए कि उन्होंने अपना बाल्यकाल देहात में ही व्यतीत किया।

मढ़वा नाम के ग्राम में, काशी से कोई तीन चार मील की दूरी पर

१८९० में प्रेमचन्द ने जन्म लिया। उनका असली नाम धनपतराय था। सब से पहले उन्होंने कानपुर की प्रसिद्ध उर्दू मासिक पत्रिका ‘ ज़माना ’ में द० र० के नाम से लिखना आरम्भ किया। फिर कई कारणों से यह नाम छोड़, नव्वाबराय के नाम से लिखने लगे, और इस नाम से उनका एक कहानी संग्रह भी छपा। फिर कई कारणों से उन्हें यह नाम भी त्याग देना पड़ा। वास्तव में उनके प्रेममयहृदय के लिए यह नाम उपयुक्त भी न था। तब वे प्रेमचन्द के नाम से लिखने लगे। और दिनों में ही यह नाम भारत भर में प्रसिद्ध हो गया। १९१६ में उनकी पहली हिन्दी कहानी ‘सरस्वती’ में प्रकाशित हुई और इसके बाद तो उनकी मँजी हुई भाषा, शैली के प्रवाह समाज की एक साधारण घटना को लेकर चित्रण करने में उनकी सफलता ने सब के मन मोह लिए। भाषा के सम्बन्ध में उन के विचार थे—कि शब्द किसी भाषा से भी क्यों न लिया जाए, ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि विचार-क्रम और शैली का प्रवाह न टूटने पाए।

स्व० प्रेमचन्द ने लग-भग बारह उपन्यास और तीन सौ कहानियां लिखीं, गोदान उनका अन्तिम उपन्यास है। अपनी जीवन-सन्ध्या में वे सिनेमा की ओर भी झुके थे, पर उनकी स्वतन्त्र-आत्मा ने वहां बन्दी होना पसन्द न किया। १९३६ में केवल ४६ वर्ष की आयु में उनका देहांत हो गया।

गुल्ली-डंडा उनकी सर्वोत्तम कहानियों में से है। इतनी छोटी सी घटना पर ऐसी उत्तम कहानी लिखना प्रेमचन्द ही का काम था—कहानी का अन्तिम वाक्य—यह पद पाकर मैं केवल उसकी दया के योग्य हूं—वह बड़ा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूं—सदैव कानों में गूंजता रहता है।

गुल्ली डंडा

हमारे अँग्रेज़ीदाँ दोस्त मानें या न मानें, मैं तो यही कहूँगा कि गुल्ली-डंडा सब खेलों का राजा है। अब भी, जब कभी लड़कों को गुल्ली-डंडा खेलते देखता हूँ, तो जी लोट-पोट हो जाता है कि इनके साथ जाकर खेलने लगूँ। न लान की ज़रूरत, न कोर्ट की, न नैट की, न थापी की। मज़े से किसी पेड़ से एक टहनी काटकर गुल्ली बना ली, और दो आदमी भी आ गए, तो खेल शुरू हो गया। विलायती खेलों में सबसे बड़ा ऐब यह है कि उनके सामान मँहगे होते हैं। जब तक कम-से-कम एक सैंकड़ा न खर्च कीजिए, खिलाड़ियों में शुमार ही नहीं हो सकता। यहाँ गुल्ली-डंडा है, बिना हर्र-फटकरी के चोखा रंग देता है, पर हम अँग्रेज़ी चीज़ों के पीछे ऐसे दीवाने हो रहे हैं कि अपनी सभी चीज़ों से अरुचि हो गई है। हमारे स्कूलों में हरेक लड़के से तीन-चार रुपये सालाना केवल खेलने की फ़ीस ली जाती है, किसी को यह नहीं सूझता कि भारतीय खेल खेलायें, जो बिना दाम कौड़ी के खेले जाते हैं। अँग्रेज़ी-खेल उनके लिए हैं, जिनके पास धन है। ग़रीब

लड़कों के सिर क्यों यह व्यसन मढ़ते हो। ठीक है, गुल्ली से आँख फूट जाने का भय रहता है। तो क्या क्रिकेट से सिर फूट जाने, तिल्ली फट जाने, टाँग टूट जाने का भय नहीं रहता। अगर हमारे माथे में गुल्ली का दाग़ आज तक बना हुआ है, तो हमारे कई दोस्त ऐसे भी हैं, जो थापी को बैसाखी से बदल बैठे। खैर, यह तो अपनी अपनी रुचि है। मुझे गुल्ली ही सब खेलों से अच्छी लगती है और बचपन की मीठी स्मृतियों में गुल्ली ही सबसे मीठी है। वह प्रातःकाल घर से निकल जाना, वह पेड़ पर चढ़कर टहनियाँ काटना और गुल्ली-डंडे बनाना, वह उत्साह, वह लगन, वह खेलाड़ियों के जमघटे, वह पदना और पदाना, वह लड़ाई-झगड़े, वह सरल-स्वभाव जिसमें छूत-अछूत, अमीर-ग़रीब का बिल्कुल भेद न रहता था, जिसमें अमीराना चोंचलों की, प्रदर्शन की, अभिमान की गुञ्जाइश ही न थी, उसी वक़्त भूलेगा जब······जब······। घर वाले बिगड़ रहे हैं, पिता जी चौके पर बैठे वेग से रोटियों पर अपना क्रोध उतार रहे हैं। अम्माँ की दौड़ केवल द्वार तक है, लेकिन उनकी विचार-धारा में मेरा अन्धकारमय-भविष्य टूटी हुई नौका की तरह डगमगा रहा है, और मैं हूँ कि पदाने में मस्त हूँ, न नहाने की सुधि है, न खाने की। गुल्ली है तो ज़रा सी, पर उसमें दुनिया भर की मिठाइयों की मिठास और तमाशों का आनन्द भरा हुआ है।

मेरे हमजोलियों में एक लड़का गया नाम का था। मुझ से दो तीन साल बड़ा होगा। दुबला, लम्बा, बन्दरों की सी लम्बी-लम्बी, पतली-पतली उँगलियाँ, बन्दरों ही की सी चपलता, वही झल्लाहट। गुल्ली कैसी हो, उस पर इस तरह लपकता था, जैसे छिपकली कीड़ों पर लपकती है। मालूम नहीं उसके माँ-बाप थे या नहीं, कहाँ रहता था, क्या खाता था, पर था हमारी गुल्ली-क्लब का चैम्पियन। जिस की तरफ वह आ जाए, उसकी जीत निश्चित थी। हम सब उसे दूर आते देख, उसका दौड़कर स्वागत करते थे और उसे अपना गोइयां बना लेते थे।

एक दिन मैं और गया दोनों ही खेल रहे थे। वह पदा रहा था, मैं पद रहा था, मगर कुछ विचित्र बात है कि पदाने में हम दिन भर मस्त रह सकते हैं, पदना एक मिनट का भी अखरता है। मैंने गला छुड़ाने के लिए वे सब चालें चलीं, जो ऐसे अवसर पर शास्त्र विहित न होने पर भी क्षम्य हैं, लेकिन गया अपना दाव लिए बगैर मेरा पिण्ड न छोड़ता था।

मैं घर की ओर भागा। अनुनय-विनय का कोई असर न हुआ।

गया ने मुझे दौड़कर पकड़ लिया और डंडा तानकर बोला—मेरा दाव देकर जाओ। पदाया तो बड़े बहादुर बन के, पदने की बेर क्यों भागे जाते हो?

'तुम दिन भर पदाओ तो मैं दिन भर पदता रहूँ।'

'हाँ तुम्हें दिन भर पदना पड़ेगा।'

'न खाने जाऊँ न पीने जाऊँ?'

'हाँ! मेरा दाव दिए बिना नहीं जा सकते।'

'मैं तुम्हारा गुलाम हूँ?'

'हाँ, मेरे गुलाम हो।'

'मैं घर जाता हूं, देखूं मेरा क्या कर लेते हो।'

'घर कैसे जाओगे, कोई दिल्लगी है। दाव दिया है, दाव लेंगे।'

'अच्छा, कल मैंने तुम्हें अमरूद खिलाया था। वह लौटा दो।'

'वह तो पेट में चला गया।'

'निकालो पेट से। तुम ने क्यों खाया मेरा अमरूद?'

'अमरूद तुम ने दिया, तब मैंने खाया। मैं तुम से माँगने न गया था।'

'जब तक मेरा अमरूद न दोगे, मैं दाव न दूँगा।'

मैं समझता था, न्याय मेरी ओर है। आखिर मैंने किसी स्वार्थ से ही अमरूद खिलाया होगा। कौन निःस्वार्थ किसी के साथ सलूक करता है। भिक्षा तक तो स्वार्थ के लिए ही देते हैं। जब गया ने मेरा अमरूद खाया, तो फिर उसे मुझसे दाव लेने का क्या अधिकार है। रिश्वत लेकर तो लोग खून

तक पचा जाते हैं। यह मेरा अमरूद यों ही हज़म कर जायगा? अमरूद पैसे के पाँच वाले थे, जो गया के बाप को भी नसीब न होंगे। यह सरासर अन्याय था।

गया ने मुझे अपनी ओर खींचते हुए कहा—मेरा दाव देकर जाओ, मैं अमरूद-समरूद नहीं जानता।

मुझे न्याय का बल था। वह अन्याय पर डटा हुआ था। मैं हाथ छुड़ाकर भागना चाहता था। वह मुझे जाने न देता था। मैंने गाली दी, उसने उससे कड़ी गाली दी, और गाली ही नहीं, दो एक चाँटे भी जमा दिये। मैंने उसे दाँत काट लिया। उसने मेरी पीठ पर डंडा जमा दिया। मैं रोने लगा। गया मेरे इस अस्त्र का मुकाबला न कर सका। भागा। मैंने तुरन्त आँसू पोंछ डाले, डंडे की चोट भूल गया और हँसता हुआ घर पहुँचा। मैं थानेदार का लड़का, एक नीच जात के लौंडे के हाथों पिट गया, यह मुझे उस समय भी अपमान-जनक मालूम हुआ, लेकिन घर में किसी से शिकायत न की।

(२)

उन्हीं दिनों पिता जी का वहाँ से तबादला हो गया। नई दुनिया देखने की खुशी में ऐसा फूला कि अपने हमजोलियों से बिछुड़ जाने का बिलकुल दुःख न हुआ। पिता जी दुःखी थे, यह बड़ी आमदनी की जगह थी। अम्माँ जी दुखी थीं, यहाँ सब चीज़ें सस्ती थीं, और मुहल्ले की स्त्रियों से घराव

सा हो गया था, लेकिन मैं मारे खुशी के फूला न समाता था। लड़कों से ज़ीट उड़ा रहा था, वहाँ ऐसे घर थोड़े ही होते हैं। ऐसे-ऐसे ऊँचे घर हैं कि आसमान से बातें करते हैं। वहाँ के अँग्रेज़ी स्कूल में कोई मास्टर लड़कों को पीटे, तो उसे जेल हो जाय। मेरे मित्रों की फैली हुई आँखें और चकित-मुद्रा बतला रही थीं, कि मैं उनकी नज़रों में कितना ऊँचा उठ गया हूँ। बच्चों में मिथ्या को सत्य बना लेने की वह शक्ति है, जिसे हम, जो सत्य को मिथ्या बना लेते हैं, क्या समझेंगे। उन बेचारों को मुझसे कितनी स्पर्द्धा हो रही थी। मानो कह रहे थे तुम भाग्यवान हो भाई, जाओ, हमें इसी ऊजड़ ग्राम में जीना भी है और मरना भी।

बीस साल गुज़र गए। मैंने इञ्जीनियरी पास की और उस ज़िले का दौरा करता हुआ उसी कस्बे में पहुँचा और डाक बँगले में ठहरा। उस स्थान को देखते ही इतनी मधुर बाल-स्मृतियाँ हृदय में जाग उठीं कि मैंने छड़ी उठाई और कस्बे की सैर करने निकला। आँखें किसी प्यासे पथिक की भाँति बचपन के उन क्रीड़ा-स्थलों को देखने के लिए व्याकुल हो रही थीं, पर उस परिचित नाम के सिवा वहाँ और कुछ भी परिचित न था, जहाँ खँडहर था, वहाँ पक्के मकान खड़े थे। जहाँ बरगद का पुराना पेड़ था, वहाँ अब एक सुन्दर बग़ीचा था। स्थान की काया-पलट हो गई थी, अगर उसके नाम और

स्थिति का ज्ञान न होता, तो मैं उसे पहचान भी न सकता। वचपन की संचित और अमर स्मृतियाँ बाहें खोले अपने उन पुराने मित्रों से गले मिलने को अधीर हो रही थीं, मगर वह दुनिया ही बदल गई थी। ऐसा जी होता था कि उस धरती से लिपट कर रोऊँ और कहूँ, तुम मुझे भूल गईं। मैं अव भी तुम्हारा वही रूप देखना चाहता हूँ।

सहसा एक खुली हुई जगह में मैंने दो-तीन लड़कों को गुल्ली-डंडा खेलते देखा। एक क्षण के लिए अपने को बिलकुल भूल गया। भूल गया कि मैं एक ऊँचा अफसर हूँ, साहबी ठाठ में, रोब और अधिकार के आवरण में।

जाकर एक लड़के से पूछा—क्यों बेटे, यहाँ कोई गया नाम का आदमी रहता है?

एक लड़के ने गुल्ली-डंडा समेट कर सहमे हुए स्वर में कहा—कौन गया? गया चमार?

मैंने योंही कहा—हाँ-हाँ वही। गया नाम का कोई आदमी है तो। शायद वही हो।

'हाँ, है तो।'

'ज़रा उसे बुला ला सकते हो?'

लड़का दौड़ा गया और एक क्षण में एक पाँच हाथ के काले देव को साथ लिये आता दिखाई दिया। मैं दूर से ही पहचान गया। उसकी ओर लपकना चाहता था कि उसके गले लिपट

जाऊँ, पर कुछ सोचकर रह गया।

बोला—कहो गया, मुझे पहचानते हो।

गया ने झुककर सलाम किया--हाँ मालिक, भला पहचानूँगा क्यों नहीं ? आप मज़े में रहे ?

'बहुत मज़े में। तुम अपनी कहो।'

'डिप्टी साहब का साईस हूँ।'

'मतई, मोहन, दुर्गा ये सब कहाँ हैं ? कुछ ख़बर है ?

'मतई तो मर गया, दुर्गा और मोहन डाकिये हो गये हैं। आप ?

'मैं तो ज़िले का इञ्जीनियर हूँ।

'सरकार तो पहले ही बड़े ज़हीन थे।'

'अब कभी गुल्ली-डंडा खेलते हो।?'

गया ने मेरी ओर प्रश्न की आँखों से देखा--अब गुल्ली-डंडा क्या खेलूँगा सरकार, अब तो पेट के धंधे से छुट्टी नहीं मिलती।

'आओ, आज हम तुम खेलें। तुम पदाना, हम पदेंगे। तुम्हारा एक दाव हमारे ऊपर है। वह आज ले लो।'

गया बड़ी मुश्किल से राज़ी हुआ। वह ठहरा टके का मज़दूर, मैं एक बड़ा अफ़सर। हमारा और उसका क्या जोड़। बेचारा झेंप रहा था; लेकिन मुझे भी कुछ कम झेंप न थी; इसलिए नहीं कि मैं गया के साथ खेलने जा रहा था,

बल्कि इसलिए कि लोग इस खेल को अजूबा समझ कर इस का तमाशा बना लेंगे और अच्छी ख़ासी भीड़ लग जाएगी। उस भीड़ में वह आनन्द कहाँ रहेगा; पर खेले बग़ैर तो रहा नहीं जाता था। आख़िर निश्चय हुआ कि दोनों जने बस्ती से बहुत दूर एकान्त में जाकर खेलें। वहाँ कौन कोई देखने वाला बैठा होगा। मज़े में खेलेंगे और बचपन की उस मिठाई को खूब रस ले-लेकर खायँगे। मैं गया को लेकर डाक बंगले पर आया और मोटर में बैठकर दोनों मैदान की ओर चले। साथ में एक कुल्हाड़ी ले ली। मैं गंभीर भाव धारण किए हुए था, लेकिन गया इसे अभी मज़ाक ही समझ रहा था। फिर भी उसके मुख पर उत्सुकता या आनन्द का कोई चिह्न न था। शायद वह हम दोनों में जो अन्तर हो गया था, वही सोचने में मगन था।

मैं ने पूछा—तुम्हें कभी हमारी याद आती थी गया? सच कहना।

गया झेंपते हुए बोला—मैं आपको क्या याद करता हजूर, किस लायक हूँ। भाग्य में आपके साथ कुछ दिन खेलना बदा था, नहीं मेरी क्या गिनती।

मैं ने कुछ उदास होकर कहा—लेकिन मुझे तो बराबर तुम्हारी याद आती थी। तुम्हारा वह डंडा, जो तुम ने तान कर जमाया था, याद है ना?

गया ने पछताते हुए कहा—वह लड़कपन था सरकार ! उसकी याद न दिलाओ।

'वाह ! वह मेरे जीवन की सबसे रसीली याद है। तुम्हारे उस डंडे में जो रस था, वह तो अब न आदर-सम्मान में पाता हूँ, न धन-दौलत में। कुछ ऐसी मिठास थी उसमें कि आज तक उससे मन मीठा होता रहता है।'

इतनी देर में हम बस्ती से कोई तीन मील निकल आए हैं। चारों तरफ़ सन्नाटा है। पश्चिम की ओर कोसों तक भीमताल फैला हुआ है, यहाँ आकर हम किसी समय कमल-पुष्प तोड़ ले जाते थे और उसके झूमक बना कर कानों में डाल लेते थे। जेठ की संध्या केसर में डूबी चली आ रही है। मैं लपक कर एक पेड़ पर चढ़ गया और एक टहनी काट लाया चट-पट गुल्ली-डंडा बन गया।

खेल शुरू हो गया। मैंने गुच्ची में गुल्ली रखकर उछाली। गुली गया के सामने से निकल गई। उसने हाथ लपकाया जैसे मछली पकड़ रहा हो। गुल्ली उसके पीछे जाकर गिरी। यह वही गया है, जिसके हाथों में गुल्ली जैसे आप-ही-आप जाकर बैठ जाती थी। वह दाहने बायें कहीं हो, गुल्ली उसकी हथेलियों में ही पहुँचती थी। जैसे गुल्लियों पर वशीकरण डाल देता हो, नई गुल्ली, पुरानी गुल्ली, छोटी गुल्ली, बड़ी गुल्ली, नोकदार गुल्ली, सपाट गुल्ली सभी उससे मिल जातीं थीं। जैसे उस

के हाथों में कोई चुम्बक हो, जो गुल्लियों को खींच लेता हो। लेकिन आज गुल्ली को उससे वह प्रेम नहीं रहा। फिर तो मैंने पदाना शुरू किया। मैं तरह तरह की धाँधलियां कर रहा था। अभ्यास की कसर बेईमानी से पूरी कर रहा था। हुच जाने पर भी डंडा खेले जाता था, हालाँकि शास्त्र के अनुसार गया की बारी आनी चाहिए थी। गुल्ली पर ओछी चोट पड़ती, तो मैं झपट कर उसे खुद उठा लेता और दोबारा टाँड लगाता। गया यह सारी बेकायदगियाँ देख रहा था, पर कुछ न बोलता था, जैसे उसे सब क़ायदे-क़ानून भूल गये थे। उसका निशाना कितना अचूक था। उसके हाथ से निकल कर गुल्ली टन से डण्डे में आकर लगती थी। उसके हाथ से छूट कर उसका काम था डण्डे में टकरा जाना, लेकिन आज वह गुल्ली डंडे में लगती ही नहीं। कभी दाहने जाती है, कभी बायें कभी आगे कभी पीछे।

आध घण्टे पदाने के बाद एक बार गुल्ली डण्डे में आ लगी। मैंने धाँधली की, गुल्ली डण्डे में नहीं लगी। बिलकुल पास से गई है, लेकिन लगी नहीं।

गया ने किसी प्रकार का असन्तोष न प्रकट किया।

'न लगी होगी।'

'डण्डे में लगती तो क्या मैं बेईमानी करता?

'नहीं भैया, तुम भला बेईमानी करोगे।'

बचपन में मजाल थी, कि मैं ऐसा धपला करके जीता बचता। यही गया मेरी गरदन पर चढ़ बैठता, लेकिन आज मैं उसे कितनी आसानी से धोखा दिये चला जाता था। गधा है सारी बातें भूल गया।

सहसा गुल्ली फिर डण्डे में लगी और इतने ज़ोर से लगी, जैसे बन्दूक छूटी हो। इस प्रमाण के सामने अब किसी तरह की धाँधली करने का साहस मुझे इस समय भी न हो सका, लेकिन क्यों न एक बार सच को झूठ बताने की चेष्टा करूँ मेरा हरज ही क्या है। मान गया, तो वाह-वाह, नहीं तो दो चार हाथ पदना ही तो पड़ेगा। अँधेरे का बहाना करके जल्दी से गला छुड़ा लूँगा। फिर कौन दाँव देने आता है।

गया ने विजय के उल्लास में कहा—लग गई! टन से बोली।

मैंने अनजान बनने की चेष्टा करके कहा—तुम ने लगते देखा? मैंने तो नहीं देखा।

'टन से बोली है सरकार!'

'और जो किसी ईंट में लग गई हो?

मेरे मुख से यह वाक्य उस समय कैसे निकला इसका मुझे खुद आश्चर्य है। इस सत्य को झुठलाना वैसे ही था, जैसे दिन को रात बताना। हम दोनों ने गुल्ली को डण्डे में

ज़ोर से लगते देखा था, लेकिन गया ने मेरा कथन स्वीकार कर लिया।

'हाँ, किसी ईंट से ही लगी होगी। डण्डे में लगती, तो इतनी आवाज़ न आती।'

मैंने फिर पदाना शुरू कर दिया, लेकिन इतनी प्रत्यक्ष धाँधली कर लेने के बाद, गया की सरलता पर मुझे दया आने लगी, इस लिए जब तीसरी बार गुल्ली डण्डे में लगी, तो मैंने बड़ी उदारता से दाँव देना तय कर लिया।

गया ने कहा—अब तो अँधेरा हो गया है भैया, कल पर रखो।

मैंने सोचा कल बहुत सा समय होगा, यह न जाने कितनी देर पदावे, इस लिए इसी वक्त मुआमला साफ कर लेना अच्छा होगा।

'नहीं, नहीं। अभी बहुत उजाला है। तुम अपना दाँव ले लो।'

'गुल्ली सूझेगी नहीं।'

'कुछ परवाह नहीं।'

गया ने पदाना शुरू किया, पर उसे अब बिलकुल अभ्यास न था। उसने दो बार टाँड लगाने का इरादा किया, पर दोनों ही बार हुच गया। एक मिनट से कम में वह अपना दाव पूरा कर चुका। बेचारा घंटा-भर पदा, पर एक मिनट में ही अपना दाँव खो बैठा। मैंने अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया।

एक दाँव और खेल लो। तुम तो पहले ही हाथ में चूक गये।

'नहीं भैया अब अँधेरा हो गया।'

'तुम्हारा अभ्यास छूट गया। क्या कभी खेलते नहीं?'

'खेलने का समय कहाँ मिलता है भैया!'

हम दोनों मोटर पर जा बैठे और चिराग जलते जलते पड़ाव पर पहुँच गये। गया चलते-चलते बोला—कल यहाँ गुल्ली-डंडा होगा। सभी पुराने खिलाड़ी खेलेंगे। तुम भी आओगे? जब तुम्हें फुरसत हो, तभी खिलाड़ियों को बुलाऊँ।

मैंने शाम को समय दिया और दूसरे दिन मैच देखने गया। कोई दस आदमियों की मंडली थी। कई मेरे लड़कपन के साथी निकले, अधिकांश युवक थे, जिन्हें मैं पहचान न सका। खेल शुरू हुआ, मैं मोटर पर बैठा बैठा तमाशा देखने लगा। आज गया का खेल, उसका वह नैपुण्य देखकर मैं चकित रह गया। टाँड लगाता, तो गुल्ली आसमान से बातें करती। कल की सी वह झिझक, हिचकिचाहट, वह बेदिली आज न थी। लड़कपन में जो बात थी, आज उसने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली थी। कहीं कल इसने मुझे इस तरह पदाया होता तो मैं ज़रूर रोने लगता। उसके डंडे की चोट खाकर गुल्ली दो सौ गज़ की खबर लाती है।

पढ़ने वालों में एक युवक ने कुछ धाँधली की। उसने अपने विचार में गुल्ली लोक ली थी। गया का कहना था-- गुल्ली ज़मीन पर लगकर उछली है। इस पर दोनों में ताल ठोंकने की नौबत आई। युवक दब गया। गया का तमतमाया हुआ चेहरा देखकर डर गया। अगर वह दब न जाता, तो ज़रूर मार पीट हो जाती। मैं खेल में न था, पर दूसरों के इस खेल में मुझे वही लड़कपन का आनन्द आ रहा था, जब हम सब कुछ भूलकर खेल में मस्त हो जाते थे। अब मुझे मालूम हुआ कि कल गया ने मेरे साथ खेला नहीं, केवल खेलने का बहाना किया। उसने मुझे दया का पात्र समझा। मैंने धाँधली की, बेईमानियां कीं, पर उसे ज़रा भी क्रोध न आया। इसलिए कि वह खेल न रहा था, मुझे खेला रहा था, मेरा मन रख रहा था। वह मुझे पदाकर मेरा कचूमर नहीं निकालना चाहता था। मैं अब अफ़सर हूँ। यह अफ़सरी मेरे और उसके बीच में दीवार बन गई है। मैं अब उसका लिहाज पा सकता हूँ, अदब पा सकता हूँ, सहचर्य नहीं पा सकता। लड़कपन था, तब मैं उसका समकक्ष था। हम में कोई भेद न था। यह पद पाकर अब मैं केवल उसकी दया के योग्य हूँ। वह मुझे अपना जोड़ नहीं समझता। वह बड़ा हो गया है, मैं छोटा हो गया हूँ।

श्री सुदर्शन

हर बात में पंजाब दूसरे प्रान्तों में एक विशिष्ठ स्थान रखता है पर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में वह प्रायः पिछड़ा हुआ ही रहा। इस बात का श्रेय श्री सुदर्शन को है कि इस मैदान में भी उन्होंने पंजाब का सिर ऊंचा किया है।

सुदर्शन जी का जन्म १८९६ में सियालकोट में हुआ। बाल्यावस्था ही से उनकी साहित्य में रुचि थी। जब छटवीं श्रेणी में पढ़ते थे तब उन्होंने उर्दू में पहली कहानी लिखी। कालेज छोड़ने के बाद आपने कई दैनिक तथा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादन-विभाग में काम किया। सिनेमा में जाने से पहले आप उर्दू की सुन्दर मासिक पत्रिका 'चन्दन' निकालते थे। हिन्दी में सब से पहली कहानी आपने १९२० में सरस्वती में लिखी।

सुदर्शन जी की कहानियां सरल, स्वाभाविक और मनोरंजक होती हैं, शैली सुन्दर, काव्य-मय और लालित्य-पूर्ण है। कुछ मिठास की नदी सी बहती चली जाती है। प्रेमचन्द की कहानियों की भाँति इनकी कहानियों में भी कोई न कोई उद्देश्य निहित रहता है। आपकी कहानियों को पढ़कर पाठक दुख की तलेटी में चाहे न पहुँचे, लेकिन हरेक कहानी में कोई न कोई स्थल

ऐसा अवश्य आता है जिस में दुख अथवा सुख के अतिरेक के कारण गला भर आता है और आँखे छलछला आती हैं।

अब तक आप अनुदित तथा मौलिक लगभग ४० पुस्तकें उर्दू में और १२ हिन्दी में लिख चुके हैं।

आपने नाटक भी लिखे हैं। 'आनरेरी मैजिस्ट्रेट' नाम से आपका एक प्रहसन काफ़ी पसन्द किया गया है।

सुदर्शन जी का असली नाम बदरीनाथ है। कुछ वर्षों से आप सिनेमा में चले गए हैं। और आपके दो एक बोलपट काफ़ी लोक प्रिय हुए हैं। पर साहित्य सेवा आप ने अभी नहीं छोड़ी। हाल ही में आपका एक सुन्दर नाटक हिन्दी में 'भाग्य-चक्र' के नाम से निकला है और सोलह शृंगार के नाम से एक कहानी-संग्रह उर्दू में प्रकाशित हुआ है।

गुरु-मंत्र

आधी रात के समय नवयुवक एकनाथ ने बहुत धीरे से अपने मकान का दर्वाज़ा खोला, और बाहर निकल आया। गली, बाज़ार, गाँव, सब सुनसान और अन्धकार-मय थे। एकनाथ ने एक क्षण के लिए ठहर कर अपने घर की तरफ देखा, अपने बूढ़े बाबा और निर्बल दादी का खयाल किया, अपने मित्र बन्धुओं के विषय में सोचा, और उस की आँखों में पानी आ गया। मगर यह निर्बलता कुछ क्षणों के लिए थी, जैसे कभी कभी पंछी पर खोलते समय रुक जाता है। एकाएक उसने आंसू पोंछ डाले, और जल्दी जल्दी पाँव उठाता हुआ गाँव से बाहर चला गया। पिंजरे में दाना पानी सब कुछ था, पंछी ने किसी की भी परवा न की और उड़ गया। चारों ओर अँधेरा था। दूर—काले वृक्षों की काली छाया तले कुत्तों और गीदड़ों के रोने की आवाजें सुनाई दे रहीं थीं। घर में बूढ़े बाबा और दादी का वात्सल्य बेसुध

पड़ा था, मगर एकनाथ सम्पूर्ण दृढ़ता से झाड़ियों में उलझता हुआ, गढ़ों में गिरता हुआ, पत्थरों से ठोकरें खाता हुआ बढ़ा चला जाता था और उसे इस बात की ज़रा भी चिन्ता न थी, कि मार्ग भयानक है और रात के अँधेरे में कई बलाएं छिपी हो सकती हैं।

प्रातःकाल जब दो बूढ़ों के हृदय-विदारक आर्तनाद से पैठन गांव में कुहराम मचा हुआ था वह कई कोस की यात्रा समाप्त कर चुका था और एक नदी के किनारे बैठा अपने पाँव धो रहा था, जिन्हें जङ्गल के कांटों ने लहूलुहान कर दिया था। उसकी देह रतजगी-यात्रा से चूर-चूर हो रही थी, परन्तु उसके विचार आशा के आकाश में उड़े चले जाते थे और उन्हें रोकने की शक्ति पृथ्वी की किसी भी वस्तु में न थी। थोड़ी देर के बाद वह उठा और अपने गाँव की तरफ़ मुँह करके खड़ा हो गया। इस समय वह अपने घर की दशा का चिन्तन कर रहा था और अपनी आन्तरिक आँखों से वहां के दृश्य देख रहा था। हम अपना घर छोड़ सकते हैं, परन्तु उस की स्मृति को भूलना आसान नहीं।

इतने में एक मुसाफिर घोड़े पर सवार उधर से गुज़रा और एकनाथ के पास पहुँच कर रुक गया। एकनाथ ने दोनों हाथ बाँधकर अभिवादन किया। मुसाफिर ने आशीर्वाद दिया। और पूछा—'कहां जाओगे भैया ?'

एकनाथ ने अपने गांव की ओर पीठ मोड़ ली और अपने

सम्मुख फैले हुए विस्तृत जंगल की तरफ़ उंगली उठा कर उत्तर दिया—'बड़ी दूर !'

मुसाफिर—'मगर फिर भी कहां ?'

एकनाथ—'श्री गुरु जी के चरणों में ।'

मुसाफिर घोड़े से उतर आया और एकनाथ के कंधे पर स्नेह से अपना हाथ रख कर बोला—'तुम्हारा गुरु कौन है ?'

एकनाथ—'पण्डित जनार्दन पन्त ।'

यह कह कर एकनाथ ने दोनों हाथ बाँध कर नम्रता से सिर झुका लिया, जैसे वह इस समय भी गुरु के सामने खड़ा था । मुसाफ़िर को नवयुवक की श्रद्धा पर आश्चर्य्य हुआ—'कौन जनार्दन पन्त ? क्या वही तो नहीं, जो देवगढ़ के दीवान हैं ?'

एकनाथ—'जी हां वही महात्मा जिन के सदृश दूसरा आत्म-संयमी आज सारे भारतवर्ष में नहीं है । क्या आप ने उन के दर्शन किए हैं ?'

यह कह कर उस ने मुसाफ़िर की ओर बड़ी उत्सुकता से देखा ।

मुसाफ़िर—'हां, कई बार दर्शन किए हैं । परन्तु वह तो किसी को गुरु-मंत्र नहीं देते, न मैं ने उन के यहां कोई शिष्य देखा है । मुझे आश्चर्य्य है कि उन्हों ने तुम्हें कैसे चेला बना लिया ।'

एकनाथ—(उदास होकर) 'उन्होंने मुझे चेला नहीं बनाया।'

मुसाफिर—'अरे!'

एकनाथ—'मगर मैंने उनको गुरु बना लिया है। अब जाकर श्री-चरणों में लेट जाता हूं। देखूँगा कैसे कृपा नहीं करते ?'

मुसाफिर--'तुम्हारी आयु थोड़ी है अभी।'

एकनाथ–'समझदार के लिए थोड़ी भी बहुत है।'

मुसाफ़िर—'न तुम्हें संसार का अनुभव है।'

एकनाथ—'गुरु जी की कृपा-दृष्टि से अनुभव भी हो जाएगा'।

मुसाफ़िर--'यह मार्ग बड़ा विकट है।'

एकनाथ--'साहस हो, तो सारे काम बन जाते हैं।'

मुसाफ़िर ने हँसकर कहा--'मगर बेटा! देवगढ़ तक कैसे पहुँचोगे? बड़ी दूर है यहाँ से।'

एकनाथ--'जिनके दिल को लगी हो, उनके लिए दूरी कोई चीज़ नहीं है।'

मुसाफ़िर--'कोई घोड़ा क्यों नहीं ले लेते।'

एकनाथ—'गुरु जी के पास नंगे पाँव ही जाना ठीक है।'

मुसाफ़िर ने यह बातें सुनीं, तो बड़ा खुश हुआ। उसने एक दुनिया देखी थी, मगर ऐसा नवयुवक उसकी आँखों से आज तक न गुज़रा था। यह नवयुवक न था, श्रद्धा और

पुरुषार्थ की जीती जागती मूर्ति था। उसने एकनाथ को प्रेम से देखा और घोड़े पर सवार होकर चला गया।

कितने कष्ट सहकर, कितने सङ्कट झेल कर एकनाथ देवगढ़ पहुँचा, इसका अनुमान करना आसान नहीं। परन्तु देवगढ़ पहुँच कर उस को वह सारे कष्ट भूल गये। प्यासा हरिण जल की खोज में कितना भागता है, कैसा घबराता है, उसका शरीर थककर पसीना-पसीना हो जाता है, परन्तु जल के समीप पहुँच कर उस की सारी थकान जाती रहती है, वहां जाकर उसका कुम्हलाया हुआ हृदय-कमल देखते देखते खिल उठता है। एकनाथ की भी यही दशा थी। वह अब गुरु जी की नगरी में आ पहुँचा था। वह स्वर्गीय स्वप्नों की पुण्य-भूमि में आ गया था, जिसके लिए उसकी आँखें तरसती थीं।

तीसरे पहर का समय था, एकनाथ पण्डित जनार्दन पन्त की सेवा में उपस्थित हुआ। उस समय पण्डित जी सरकारी काग़ज देखने में तन्मय हो रहे थे। एकनाथ चुपचाप एक कोने में खड़ा हो गया और भक्ति-भाव स उनकी ओर देखने लगा। यही वह व्यक्ति है, जो संसार और संसार के व्यवहार में रहते हुए भी संसार से बाहर है, जो गृहस्थ होते हुए भी अपने युग का सब से बड़ा सन्यासी है, जो देवगढ़ का दीवान भी है, सूरमा सिपाही भी है, सेनापति भी है, और पण्डित भी है। यही वह राज-भक्त है, जिसका हिन्दू और मुसलमान दोनों

सन्मान करते हैं, जिसके सामने सिर उठाने की बादशाह को भी मजाल नहीं। एकनाथ गद्गद् हो गया। उसकी आंखों में पानी भर आया। सहसा पण्डित जी ने सिर उठाया और एकनाथ की तरफ देखा। एकनाथ के शरीर में बिजली की लहर सी दौड़ गई। यह तो वही मुसाफ़िर थे, जो उसे अपने गाँव के पास मिले थे, जो हँस हँस कर बातें करते थे, जिन की आँखों में मन को मोहने वाली शक्ति भरी थी। एकनाथ दौड़कर आगे बढ़ा और पण्डित जी के चरणों से लिपट गया। इस समय उसके आँसू पण्डित जी के पाँव पर गिर रहे थे। मगर यह आँसू साधारण आँसू न थे, एकनाथ का प्रेम था, जो अपने गुरु के श्री-चरणों पर निछावर हो रहा था। यह उसकी श्रद्धा थी, जो अपने देवता को रिझाने के लिए हृदय-गृह से चली थी।

पण्डित जी ने उसे पाँव पर से उठाया और उद्दण्ड से उद्दण्ड पुरुष को भी बस में कर लेने वाले ढंग से मुस्कराकर कहा—'आख़िर तुम यहाँ आ गए! मगर बहुत कष्ट हुआ होगा।'

एकनाथ ने उनके पाँव की तरफ़ देखते हुए उत्तर दिया-'श्री-चरणों के दर्शन करके सारा कष्ट भूल गया।'

पण्डितजी—'तो अब क्या इच्छा है?'

एकनाथ—'भगवान सब कुछ जानते हैं, अपने मुँह से क्या कहूं।'

पण्डितजी--'गुरु-मन्त्र चाहते हो क्या ?'

एकनाथ—'यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न है।'

पण्डितजी--'मैं साधारण गृहस्थ हूं, मुझ से तुम्हारा कल्याण क्या होगा ? किसी परमहंस के पाँव क्यों नहीं पकड़ते ? बेड़ा पार हो जाए।'

एकनाथ--'मैं ने इस युग का सब से बड़ा परमहंस पा लिया, अब और कहां जाऊं ? आप गृहस्थ हैं, परन्तु आप की पदवी साधु सन्यासियों से भी ऊँची है।'

पण्डितजी--'यह तुम्हारी श्रद्धा है। मैं तो राजा का एक मामूली नौकर हूं।'

एकनाथ--'मगर मेरे लिए तो आप राजाओं के भी राजा हैं।'

यह कह कर एकनाथ फिर झुका और पण्डित जी के पाँवों में लेट गया। पण्डित जी निरुत्तर हो गए। विनय और श्रद्धा के सामने तर्क की पेश नहीं जाती। देवगढ़ के दीवान साहब एक साधारण ग्रामीण नवयुवक के सामने चुप थे, और न जानते थे कि उसे कैसे समझाएं? सोच सोच कर उन्हों ने उसे उठाया और गम्भीरता से कहा—'हमें गुरु-मन्त्र देने में आपत्ति नहीं, परन्तु पहले तुम्हें सिद्ध करना होगा कि तुम इसके अधिकारी हो। कहो परीक्षा के लिए तैयार हो ?'

एकनाथ ने सिर झुका कर उत्तर दिया—'जी हां ! बड़ी ख़ुशी से।'

यह कह कर उस ने गुरु के पांव तले से मिट्टी उठाई और माथे पर मल ली। मानो, यह मिट्टी न थी, चन्दन का बुरादा था।

तीन वर्ष वीत गए। एकनाथ ने गुरु जी की सेवा में दिन रात एक कर दिया। ऐसी लगन से किसी विके हुए दास ने भी अपने स्वामी की सेवा न की होगी। वह उनके कपड़े धोता था, उन के लिए धान कूटता था, पानी भरता था, बाल वच्चों को खिलाता था और इतना ही नहीं, उन के दफ़्तर का सारा काम अपने हाथ से करता था। दीवान साहब अब हिसाव किताब आदि बहुत कम देखते थे, सारा स्याह-सफेद एकनाथ के हाथ में था। रियासत के लोग उसकी ईश्वरदत्त योग्यता और कार्यपटुता देख कर वाह-वाह करते थे। यहां तक कि राजा भी उसकी प्रशंसा करता था। मगर एकनाथ को इस पर तनिक भी अभिमान न था। वह समझता था, गुरु जी परीक्षा ले रहे हैं। पास हो गया, तो जन्म-मरण के फंदे से मुक्त हो जाऊँगा।

प्रातःकाल था, पण्डित जी अपने मन्दिर में बैठे ईश्वर का भजन कर रहे थे और एकनाथ बाहर खड़ा था, कि कोई विघ्न न डाल दे। इतने में घोड़े के टापों का शब्द सुनाई दिया। एकनाथ डर गया। उसे भय हुआ कि कहीं इस से गुरु जी की समाधि न खुल जाए। उन का ध्यान टूट गया तो क्या जवाब दूँगा? वह जल्दी से बाहर निकला कि सवार को

रोक दे। पर यह सवार कोई साधारण सवार न था, यह शाही सवार था, जो राजा का ख़ास परवाना लेकर आया था एकनाथ ने आगे बढ़कर कहा—'गुरु जी ईश्वर भजन कर रहे हैं। नीचे उतर आओ।'

सवार घोड़े से नीचे उतर आया और जेब से एक मुहर वाला लिफाफा निकाल कर बोला—'यह शाही परवाना है! अभी दीवान साहब के पास पहुँचा दो।'

एकनाथ ने लिफाफा ले लिया और उत्तर दिया—'वह तो समाधि में हैं।'

सवार—'कोई बात नहीं। जाकर समाधि से उठा दो।'

एकनाथ—'यह असम्भव है। (थोड़ी देर बाद) क्या बहुत ज़रूरी काम है।'

सवार—'अब मैं तुम से क्या कहूँ? ज़रूरी है या नहीं। राजा साहब का हुक्म है। इसी समय पहुँचाओ। मैं पागल न था जो तुम पर ज़ोर देता।'

एकनाथ ने लिफाफे को उलट कर देखा, और कहा—'मगर ऐसी कौन सी बात है, जो ज़रा भी प्रतीक्षा नहीं कर सकती।'

सवार—'भैया! मेरा कर्तव्य आज्ञा का पालन करना है। तुम जाकर सूचना देते हो या मैं खुद जाऊं? हर हालत में यह परवाना अभी उनके पास पहुँच जाना चाहिए। ज़रा सी देर भी रियासत को बर्बाद कर देगी।

एकनाथ—'मगर इस समय तो उनके पास कोई भी नहीं जा सकता। यहां तक कि यदि स्वयं राजा साहिब आ जाएं, तो उनको भी आगे न बढ़ने दूं। ईश्वर के ध्यान में हैं।'

सवार ने कुछ सोचकर धीरे से कहा—'तो तुम्हें साफ़ ही कहना पड़ेगा। शहर पर किसी दुश्मन ने हमला किया है। राजा साहिब यह परवाना भेजकर अपने कर्तव्य से निवृत्त हो गए। शहर बचे या बर्बाद हो, उन की बला से। और किसी को इस की फ़िक्र ही नहीं। ले देके एक दीवान साहब हैं, जिन को शहर की हिफाज़त का ख़्याल है, और जिन के इशारे पर सिपाही मर मिटने को तैयार हैं। अब यह तुम खुद ही सोच लो कि उन को इस वक़्त सूचना देना मुनासिब है या नहीं। मगर मैं इतना कहे देता हूं कि उनको सूचना न हुई, तो दुश्मन किले की ईंट से ईंट बजा देगा।'

यह कह कर सवार चला गया, मगर उस के शब्द एकनाथ के कानों में उसी तरह गूँज रहे थे। उस ने परवाना गुरु जी के काग़ज़ों में रख दिया और घुटनों पर सिर रखकर सोचने लगा, कि क्या करना चाहिए? उठाऊं या न उठाऊं? ध्यान में हैं। जो राजाओं का भी राजा है, उस के दरबार में हैं। कहीं अप्रसन्न न हो जाएं, क्रोध में न आ जाएं। सब किये कराये पर पानी फिर जाएगा। एक दिन कहते थे,

भगवान अपने भक्तों का काम स्वयं कर देते हैं। कहेंगे—यह बात तुझे कैसे भूल गई? लज्जित हो जाऊँगा, उत्तर न दे सकूँगा, उन के सामने सिर उठाने के योग्य न रहूँगा। तो ठीक है, मुझे चुप रहना चाहिए देखूं परमात्मा क्या करता है?

एकनाथ निश्चिन्त हो गया और इधर उधर टहलने लगा। मगर चिन्ता शहद की मक्खी के समान है। इसे जितना हटाओ उतना ही और चिमटती है। एकनाथ को फिर इसी चिन्ता ने आ घेरा। कहीं वैरी निकट न आ पहुँचा हो, राजा ने जब ही ज़रूरी परवाना भेजा है। ऐसा न हो, मैं यहां मन्दिर के द्वार पर बैठा रहूं और गढ़ पर दुश्मन का अधिकार हो जाए। उस समय गुरु जी के मन की क्या अवस्था होगी? बहुत नाराज़ होंगे। कहेंगे—तुझे इतना भी विवेक नहीं कि समय कुसमय ही पहचान सके। हम समाधि में बैठे रहे, उधर शहर की सफ़ाई हो गई। इस का उत्तरदाता केवल तू है, जिस ने ऐसी मूर्खता की। एकनाथ असमंजस में पड़ गया। कभी सोचता उठा देना चाहिए, इस समय यही धर्म है। कभी सोचता नहीं उठाना चाहिए, समाधि में हैं। वह दोनों तरफ़ देखता था, परन्तु उसे दोनों तरफ़ अन्धकार दिखाई देता था। प्रकाश कहीं भी न था। वह घबराहट की दशा में इधर उधर फिर रहा था। ऐसी दशा उस की आज तक कभी न हुई थी। अपने चारों तरफ़ काले नागों को फुंकारे मारते देखकर भी उसका विवेक नष्ट न

होता। मगर इस समय ... ...।

वह बहुत व्याकुल था। उसके मस्तिष्क से पसीने की बूंदें टपक रही थीं। उसके मुँह का रङ्ग एक एक क्षण में बदलता था। जैसे वह उसके जीवन-मरण का प्रश्न हो। इस समय उसे कौन बचा सकता है? इस निराशा के भँवर से उसे कौन निकाल सकता है? सिवाय गुरु जी के और कोई नहीं! और गुरु जी......उसने उनकी ओर देखा। वह अभी तक आँखें बन्द किए ध्यान में बैठे थे। एकनाथ भूमि पर गिर पड़ा और फूट फूट कर रोया, मगर इससे क्या होता था! समय बहुत तेज़ी से उड़ा चला जाता था।

इतने में दुर्ग के बाहर दुश्मन की तोपें गर्जने लगीं। एकनाथ का पीला मुँह और भी पीला हो गया। अब सोचने का अवसर न था, काम करने का समय था। एक क्षण में इधर या उधर! एकनाथ ने अपने धड़कते हुए दिल पर हाथ रखा, अपनी तर्क-शक्ति को एकत्रित किया, एक मिनट के लिए सिर झुकाया और निश्चय कर लिया।

थोड़ी देर बाद वह गुरु जी की जंगी पोशाक पहने उनके जङ्गी घोड़े पर सवार था और देवगढ़ की वीर सेना उसके पीछे 'बम बम महादेव' करती हुई दुर्ग से बाहर निकल रही थी। एकनाथ लड़ा, और विजयी हुआ और दुश्मन को भगा कर वापस आ गया। परन्तु उस समय यह किसी को भी पता न था कि यह एकनाथ है, पंत जी नहीं हैं। एकनाथ

1150

ने घोड़ा अश्व-शाला में वाँध दिया, कवच उतार कर दीवार के साथ लटका दिया और अपने वसन्ती रङ्ग के वस्त्र पहन कर चुपचाप अपने स्थान पर वैठ गया, जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

थोड़ी देर वाद गुरु जी की समाधि खुली और वह वाहर निकले। वहां हर एक के मुँह पर इसी घटना का वखान था। लोग कहते थे, आज दीवान साहव ने कमाल किया। उनकी तलवार ऐसे चलती थी जैसे क़ैंची कपड़े पर चलती है। दुश्मन कैसे घमण्ड से आया था। मानों देवगढ़ में सिपाही नहीं वसते, पशु-पक्षी रहते हैं। मगर दीवान साहव ने उसके दाँत खट्टे कर दिए। दीवान साहव को आश्चर्य हो रहा था कि ये कहते क्या हैं? कौन आया? किसने आक्रमण किया? किसने दाँत खट्टे किये। इन को किसी भी वात का ज्ञान न था। आश्चर्य-चकित आगे बढ़ जाते थे कि एक स्थान पर कुछ आदमी वातें करते दिखाई दिए। दीवान साहव उनके पीछे खड़े हो गए और सुनने लगे।

एक आदमी कह रहा था—'आज तो दीवान साहव की चुस्ती चालाकी देखने योग्य थी।'

दूसरा—'हम उन से छोटे हैं, परन्तु हम में वह जोश नाम को नहीं। अद्भुत आदमी हैं।'

तीसरा—'आदमी! वाह भाई वाह!! उन्हें आदमी कौन कहता है। वे तो कोई ऋषि हैं। पापी प्राणियों में यह शक्ति

कहां। जवानी, बुढ़ापा सब उनके बस में हैं। चाहे बूढ़े बन जाएं, चाहे जवान बन जाएं।'

चौथा मुसलमान था, वह गम्भीरता से बोला-'ज़रूर ज़रूर बड़े बहादुर हैं। आज तो बिलकुल नौजवान मालूम होते थे, वह बुढ़ापा कहीं नज़र ही न आता था।'

तीसरा—'और भैया! हम तो देख रहे थे दुश्मन उन को देखते ही किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते थे, जैसे किसी ने मन्त्र पढ़कर उनकी संज्ञा छीन ली हो।'

चौथा—'आँखों से आग बरसती थी। सिद्धपुरुष महात्माओं के यही लक्षण हैं। जिसकी तरफ़ देख लें वही वश में हो जाता है। कुछ करना चाहे तब भी नहीं कर सकता।'

दूसरा—'और उनका घोड़ा कैसा उड़ता चला जाता था, यह शायद आप ने नहीं देखा।'

तीसरा—'खूब देखा, दो ही घण्टे में दुश्मन मैदान छोड़ भागा। किस घमण्ड से आया था, मानो विजय निश्चित है।

चौथा—'अब कभी इस तरफ़ देखने का भी साहस न करेगा।'

पहला—'समझता होगा, बादशाह विलासप्रिय हैं, जाते ही विजय हो जाएगी, यह पता न था कि पंत जी का सामना है। कैसा भागा!'

दूसरा—'अच्छी शिक्षा मिली। आजीवन स्मरण रखेगा।'

पांचवां--'परन्तु एक और बात भी सुनी है, सुनकर बुद्धि चकराती है। बड़ी अद्भुत बात है।'

पहला--'वह क्या ?'

पांचवां--'कुछ लोगों का कहना है, जब वह दुश्मन से लड़ रहे थे, उसी समय वह अपने मन्दिर में भी बैठे थे।'

दूसरा—हां, हां, हां ! सुना तो हमने भी है।'

तीसरा—'परन्तु एक ही समय में दो स्थानों पर ! यहां भी, वहां भी !! अचरज होता है।'

चौथा – 'भाई जिसकी पीठ पर परमेश्वर का हाथ हो, उसके लिए कुछ भी कठिन नहीं। भगवान जो चाहे, कर दे, उसका हाथ कौन पकड़ सकता है ? वह चाहे तो तुम अभी आकाश में उड़ने लगो, हम मुँह देखते ही रह जाएं। प्रभु की लीला है।'

पांचवां—'और क्या ?'

पहला–'यह दीवान साहब नहीं हैं, नगर-रक्षक देवता हैं।'

सहसा एक आदमी ने पीछे मुड़कर देखा और दूसरे को दिखाया। सब दंग रह गए। यह क्या ? दीवान साहब चले जा रहे हैं। एक बोला—'लो यह भी देख लो। हम में से किसी का रूप धारण करके यहां खड़े थे, अब अपने रूप में जा रहे हैं। हम ने तो पहले ही कह दिया था कि यह महात्मा जो चाहें सो कर सकते हैं।'

अब दीवान साहब सब कुछ समझ गए। यह काम एक-

नाथ ही का है, किसी दूसरे का नहीं। उसी ने हमारे वस्त्र पहने और दुश्मन को हरा कर लौट आया। यह बालक कितना वीर है, कितना समझदार? राजा का परवाना आया होगा हम समाधि में थे, हमें नहीं उठाया, स्वयं लड़ने चला गया। कोई मूर्ख होता, तो कहता, शहर लुटता है, तो लुटे। हमें क्या? बैठे गुरु की आज्ञा का पालन कर रहे हैं। उन्होंने मन्दिर में पहुँचते ही एकनाथ को गले से लगा लिया और कहा—'तूने मेरी लाज रख ली।'

एकनाथ बारबार उनके चरणों में गिरता था, कहता था—'आप मुझे लज्जित करते हैं। मैंने तो कुछ भी नहीं किया।'

पण्डित जी ने उसे स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखा और कहा—'तुम्हारी वीरता की लोग भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं, मुझे यह पता न था कि तुम तलवार के भी धनी हो।'

एकनाथ—'यह सब आप की कृपा है, वरना मेरी भुजाओं में ऐसा बल कभी न था।'

पण्डितजी—'लोगों को सन्देह भी नहीं हुआ कि यह तुम हो, मैं नहीं हूं।'

एकनाथ—'और वास्तव में यह आप ही का प्रताप है, नहीं मैं किस योग्य था? मुझे केवल इतना स्मरण है कि मैं ने आप के वस्त्र पहने और घोड़े पर सवार हुआ इस के बाद क्या हुआ इस का मुझे ज़रा भी ज्ञान नहीं। मुझे ऐसा

मालूम होता था जैसे कोई दैवी शक्ति मुझे उड़ाए लिए जाती है, जैसे मैं अपने आपे में न था। अवश्यमेव आप ही की सत्ता मेरे शरीर में आ गई थी। अन्यथा यह विजय असम्भव थी। शरीर मेरा था, चेतना आप की थी।'

पण्डितजी—'लोग अब तक यही समझते हैं कि यह मैं ही था।'

एकनाथ—'स्वयं मेरी भी यही धारणा है। आपने मुझे एकमात्र अपना साधन बनाया था।'

इस श्रद्धा को देख कर पण्डित जी की आँखें सजल हो गईं। थोड़ी देर बाद बोले—'वत्स! अब मैं बूढ़ा हो गया हूं। इस बुढ़ापे में यह राज्य-कार्य्य करना बड़ा कठिन है। मैं चाहता हूँ, अब चार दिन विश्राम करूं। दीवान की पदवी तुम सँभालो तो मुझे छुट्टी मिले। आज की घटना ने मेरी आंखें खोल दी हैं। मुझे विश्वास हो गया है कि यह काम तुम खूब सँभालोगे। राजा साहिब को भी आपत्ति न होगी। मेरा जा कर दो शब्द कह देना ही काफी है, वे स्वीकार कर लेंगे। कहो तो अभी जाऊं।'

एकनाथ की आँखों में आँसू आ गए। उस ने दोनों हाथ बाँध लिए, जैसे कोई भूल हो गई हो। वह भूमि पर मुँह के बल गिर पड़ा और नम्रता से बोला—'मुझे कुछ नहीं चाहिए। केवल आप के चरणों में पड़ा रहूं। मेरे लिए यही सब कुछ है।'

पण्डित जी एकनाथ का अभीष्ट समझ गए, परन्तु चुप रहे। अभी एक परीक्षा बाकी थी।

और कुछ ही दिनों बाद उस का समय भी आ गया।

प्रातःकाल था, एकनाथ पण्डित जी के स्नान के लिए पानी भर रहा था। इतने में पण्डित जी खड़ाऊं पहने हुए आए और मुस्करा कर बोले—'बेटा एकनाथ! कल नव वर्षारम्भ है। इस वर्ष का हिसाब किताब तैयार कर लो। समय थोड़ा है, केवल आज का दिन और आज की रात। परन्तु तुम्हारे जैसे योग्य आदमी के लिए यह कठिन नहीं।'

एकनाथ ने पानी का घड़ा हाथ से रख दिया।

पण्डितजी—'राजा साहिब कल हिसाब देखेंगे। तैयार हो जाएगा या नहीं? यदि न हो सके, तो मैं कर लूं।'

एकनाथ—(धीरे से) 'मैं कर लूँगा।'

पण्डित जी—'तो जाओ आरम्भ कर दो। समय बहुत कम है।'

एकनाथ दफ़्तर में पहुँचा और हिसाब किताब देखने लगा। काम साधारण न था, सारे वर्ष का हिसाब था। और वह भी किसी साहूकार का नहीं, एक रियासत का। परन्तु एकनाथ के दिल में ज़रा भी घबराहट न थी, न मुँह पर चिन्ता के चिन्ह थे। उसने किताबों का ढेर सामने रख लिया और पालती मारकर बैठ गया। सूरज आकाश में धीरे धीरे ऊँचा उठा और सिर पर पहुँच गया। मगर एक

नाथ उसी तरह बैठा हिसाब देखता रहा। सन्ध्या हो गई, पर एकनाथ को पता भी न था। नौकर आकर शमादान जला गया, एकनाथ काम में लगा रहा। उसे खाने पीने की सुध न थी, न सोने की इच्छा थी। ख़याल यह था, कि किसी प्रकार काम समाप्त हो जाए।

आधी रात बीत गई, एकनाथ ने सारा काम समाप्त कर लिया। सब कुछ ठीक था, केवल एक पैसे का फ़र्क़ था। एकनाथ के तेवर बदल गए। सोचने लगा, ज़रा सी भूल ने सारा काम चौपट कर दिया? उसने रकमों को दूसरी बार जमा किया। फिर वही फ़र्क़। फिर हिसाब किया। पर फ़र्क़ न निकला। एक पैसे का अन्तर ज्यों का त्यों था। एकनाथ घबरा गया। रात आधी से भी अधिक जा चुकी थी। चारों ओर सन्नाटा था। लोग अपने अपने घरों में सुख-चैन की नींद सो रहे थे, मगर एकनाथ शमादान के सामने बैठा था और सोचता था, कि पैसे का फ़र्क़ कहां है?

पिछले पहर पण्डित जनार्दन की आँख खुली। खिड़की से देखा, दफ़्तर में अभी तक प्रकाश है। समझ गए, एकनाथ जाग रहा है। वह धीरे से उठे और बाहर चले आए। दफ़्तर के बाहर चौकीदार भी ऊँघ रहा था, केवल एकनाथ जागता था। पण्डित जी ने धीरे से कहा—'एकनाथ!'

मगर एकनाथ ने कोई उत्तर न दिया, अपना हिसाब करता रहा। पण्डित जी ने फिर पुकार कर कहा—'एकनाथ!'

एकनाथ ने कुछ नहीं सुना।

पण्डित जी और आगे बढ़े, और ज़रा ऊँची आवाज़ से बोले—'एकनाथ !'

मगर जवाब में फिर वही सन्नाटा था, जैसे एकनाथ जागता न था, सोता था।

पण्डित जी को अचरज हुआ। वह और आगे बढ़े, और शमादान के सामने इस प्रकार खड़े हो गए कि उनके शरीर की छाया पुस्तक पर पड़ती थी। मगर एकनाथ को अब भी मालूम न हुआ। उसके लिए पुस्तक के अक्षर उसी तरह साफ़ और रौशन थे। वह हिसाब में तन्मय हो रहा था। उसे दीन-दुनिया की सुध न थी। इसी तरह आध घण्टा बीत गया।

सहसा एकनाथ को अपनी भूल का पता लग गया। उस ने खुशी से सिर हिलाया, और हिसाब ठीक करके पुस्तकें बन्द कर दीं। इसके बाद उस ने दोनों हाथ मिलाकर सिर से ऊपर उठाए और अँगड़ाई लेने लगा। इतने में उसने चकित होकर देखा, पण्डित जी सामने खड़े हैं। वह घबरा कर आगे बढ़ा और उनके पाँव में झुक गया।

पण्डित जी ने पूछा—'हिसाब किताब हो गया ?'

एकनाथ—'जी हां, हो गया। आप कैसे आए ?'

पण्डितजी—'हम यहां बड़ी देर से खड़े हैं।'

एकनाथ चौंक पड़ा।

पण्डितजी—'हमने तुम्हें कई वार बुलाया, मगर क्या जाने तुम कहां थे।'

एकनाथ—'मैंने एक भी आवाज़ नहीं सुनी।'

पण्डितजी—'हमारी छाया से पुस्तक पर अँधेरा होगया, तुम्हें इसका भी ज्ञान न हुआ।'

एकनाथ—(हाथ बाँधकर) 'अब क्या कहूं, मुझे सन्देह तक नहीं हुआ, कि कोई इस कमरे में खड़ा है। इस समय मेरी दुनिया केवल यह पुस्तक थी।'

पण्डित जी खड़े थे, बैठ गए और एकनाथ के मुँह की ओर देखकर बोले—'प्रातःकाल से इसी भाँति बैठे थे क्या ?'

एकनाथ—'जी हां, इसी भाँति।'

पण्डित जी—'कुछ खाया पिया भी नहीं ?'

एकनाथ—'जी नहीं।'

पण्डितजी—'नींद भी नहीं आई ?

एकनाथ—'ज़रा भी नहीं।'

पण्डितजी—'इस समय क्या कर रहे थे ?

एकनाथ—'एक पैसे का फ़र्क पड़ता था, उसे निकाल रहा था। बड़ी कठिनाई से पता चला।'

पण्डितजी–'एक पैसे के लिए इतना परिश्रम क्यों किया। मामूली बात थी।'

एकनाथ—'मैंने सोचा, भूल आख़िर भूल है। चाहे एक पैसे की हो, चाहे एक लाख की।'

पण्डित जी का चेहरा चमकने लगा। वह गम्भीरता से बोले--'वत्स ! तू ने मुझे प्रसन्न कर दिया। मेरी परीक्षा बड़ी कठिन थी। बड़े बड़े साधु-सन्त भी कदाचित् इसमें सफल न होते, परन्तु तू सब में उत्तीर्ण हो गया। तू ने कोसों की यात्रा की, और सिद्ध कर दिया कि तेरा हृदय श्रद्धा का सागर है; तू ने सिद्ध किया कि तुझ में सेवा-भाव है; तूने युद्ध-क्षेत्र में विजय प्राप्त की, जो प्रमाण इस बात का है कि तू वीरात्मा है, और तुझे मृत्यु का भय नहीं और फिर दीवान की पदवी को ठुकरा दिया। कोई लोभी ऐसे अवसर पर फूला न समाता। यह त्याग-भाव कितना पवित्र कितना महान् है। परन्तु मैंने तुझे उस समय भी गुरु-मंत्र न दिया। क्योंकि अभी एक परीक्षा बाकी थी, आज वह भी समाप्त हो गई। मैं देखना चाहता था कि तुझ में एकाग्रता है या नहीं, जिसके बिना ईश्वर-भक्ति के मार्ग पर दो पग भी चलना असम्भव है। मैं आया, मैंने तुझे आवाजें दीं, मैंने तेरा प्रकाश रोक लिया, परन्तु तुझे मालूम भी न हुआ। यह एकाग्रता की पराकाष्ठा है। अब मैं तुझे गुरु-मंत्र देने को तैयार हूं। मुझे तेरे जैसे शिष्य पर गर्व है।'

उस समय एकनाथ के चेहरे पर ऐसा तेज था, जो इस मर्त्य-लोक में कभी कभी दिखाई देता है। आज उसका वर्षों का परिश्रम सफल हुआ है, आज वह परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ

है। उसने वहीं भूमि पर गिरकर घुटने टेक दिए।

पण्डित जी ने फिर कहा--'और मुझे यह भी आशा है, कि जिस प्रकार तू ने आज एक पैसे की भूल के लिए अपना इतना समय खर्च किया है, उसी प्रकार भक्ति-मार्ग पर चलते हुए भी तू इस नियम को स्मरण रखेगा और छोटी से छोटी बुराई की अवहेलना न करेगा। अब जाकर आराम कर। कल मैं तुझे प्रकाश, पवित्रता और अमर जीवन के सन्मार्ग पर चलने का उपदेश दूँगा।'

एकनाथ का चेहरा और भी चमकने लगा।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री

कुछ देर तक हिन्दी में शास्त्री जी की लौह-लेखनी का बोल बाला रहा है। पुरानी ऐतिहासिक घटनाओं को पृथ्वी के नीचे दबे हुए भग्न खंडहरों से निकाल कर, उन्हें अपनी ओजमयी, काव्य का रस देने वाली भाषा का आवरण पहना कर, पाठकों के सामने आप ने रखा। प्रवाह तीखा और मार्मिक, कला स्पष्ट और अभिधात्मक—लोग बहुत देर तक आपकी लेखनी की रसमाधुरी का पान करते रहे, पर इधर कुछ दिनों से आप, लिखना छोड़, दिल्ली से कुछ मील दूर शाहदरे में एकान्त और शान्त-मय जीवन बिता रहे हैं।

शास्त्री जी की आयु ५५ से ऊपर है। जन्म आपका १८८१ में दिल्ली में हुआ। आप एक सफल वैद्य हैं। कई वर्ष तक बम्बई में काम करते रहे, फिर दिल्ली और लखनऊ में रहे। आपकी पहली कहानी १९१४ में 'गृह-लक्ष्मी' में प्रकाशित हुई थी किन्तु तब कहानी लेखक के नाते उन्हें बहुत कम लोग जानते थे। 'हृदय की परख' आपका पहला उपन्यास था, जिसने हिन्दी साहित्य में हलचल मचा दी। फिर आप कहानियों की ओर झुके। यहां भी आपको सफलता मिली। जो कुछ लिखते हैं उस में डूब कर लिखते हैं और मन्तव्य के अनुकूल लिखते हैं।

बावर्चिन

सन् १८४५ की २८ वीं मई के तीसरे पहर एक पालकी चाँदनी चौक में होकर लाल क़िले की ओर जा रही थी। पालकी बहुमूल्य कमख़्वाब और ज़री के पर्दों से ढँकी हुई थी। आठ कहार उसे कन्धों पर उठाये थे और १६ तातारी बाँदियाँ नङ्गी तलवारें लिए उसके गिर्द चल रही थीं। उनके पीछे ४० सवारों का एक दस्ता था, जिसका अफ़सर एक कुम्मेत अरबी घोड़े पर सवार था। उसकी ज़रबफ़्त की बहुमूल्य पोशाक पर कमर में नाज़ुक तलवार लटक रही थी, जिसकी मूठ पर गङ्गाजमुनी काम हो रहा था। उसकी काली घनी डाढ़ी के बीच, अङ्गारे की तरह दहकते चेहरे में मशाल की तरह जलती हुई आँखें चमक रही थीं, जिन्हें वह चारों तरफ़ घुमाता हुआ, अकड़ कर, किन्तु खूब सावधानी से पालकी के पीछे-पीछे जा रहा था।

भयानक गर्मी से दिल्ली तप रही थी। तब चाँदनी चौक की सड़कें आज की-सी तारकोल बिछी हुई आईने की तरह

चमचमाती न थी, न मोटरों की घोंघों-पोंपों और सर्राटेवन्द दौड़ थी। चाँदनी चौक की सड़कों पर काफ़ी गर्द-गुबार रहता था। हाथी, घोड़े, पालकी और नागौरी बैलों की जोड़ी से ठुमकती हुई बहालियाँ एक अजब बाँकी अदा से उछला करती थीं।

अब जिस स्थान पर घण्टाघर है, वहाँ तब एक बड़ा सा हौज़ था, जो चाँदनी चौक की नहर से मिल गया था; और जहाँ कम्पनी बाग और कमेटी की लाल सङ्गीन इमारत खड़ी है, वहाँ एक बड़ी भारी किन्तु ख़स्ताहाल सराय थी, जिसकी बुर्जियाँ टूट गई थीं और जहाँ अनगिनती खच्चर, टट्टू, बैलगाड़ियाँ, घोड़े और परदेसी बेतरतीबी से पेड़ों के नीचे या बेमरम्मत कोठरियों में भरे हुए थे।

जिस समय पालकी वहाँ से गुज़र रही थी, उस समय हौज़ पर ख़ासा धोबी-घाट लगा हुआ था। कोई नहा रहा था, कोई साबुन से कपड़े धो रहा था। सराय के टूटे किन्तु सङ्गीन फाटक पर देशी-विदेशी आदमियों का जमघट था!

पालकी अवश्य ही कहीं दूर से आ रही थी। कहार लोग पसीने से लथपथ हो रहे थे, उनका दम फूल रहा था और वे लड़खड़ा रहे थे। पीछे से अफ़सर तेज़ चलने की ताकीद कर रहा था, मगर ऐसा मालूम होता था कि अब और तेज़ चलना असम्भव है।

कहारों में एक बूढ़ा कहार था उसका हाल बहुत ही बुरा

हो रहा था। कुछ क़दम और चल कर वह ठोकर खाकर गिर पड़ा, पालकी रुक गई।

तातारी बाँदियाँ झिझक कर खड़ी हो गईं। अफ़सर ने घोड़ा बढ़ाया। बूढ़ा अभी सम्हला न था। एक चाबुक सपाक से उसकी गर्दन और कनपटी की चमड़ी उधेड़ गया। साथ ही बिजली की कड़क की तरह उसके कान में शब्द पड़े—उठ, उठ, ओ दौज़ख के कुत्ते देर हो रही है।

कहार ने उठने की चेष्टा की, पर उठ न सका। वह गिर गया। गिरते ही दस-बीस, पच्चीस-पचास चाबुक तड़ातड़ पड़े, खून का फ़व्वारा छूटा और कहार का जीवन-प्रदीप बुझ गया!!

लाश को पैर की ठोकर से ढकेल कर अफ़सर ने खूनी आँखें भीड़ पर दौड़ाईं। एक गठीला गौरवर्ण युवक मैले और फटे वस्त्र पहने भीड़ में सब से आगे खड़ा था। मुश्किल से रेखें भीगी होंगी। अफ़सर ने डपट कर उसे पालकी उठाने का हुक्म दिया। युवक आगे बढ़ा। दूसरे ही क्षण सपाक से एक चाबुक उसकी पीठ पर पड़ा और साथ ही ये शब्द—साले, जल्दी!

युवक ने क्रुद्ध स्वर में कहा—जनाब! हुक्म बजा लाता हूँ, मगर ज़बान सम्हाल.......

दस-बीस चाबुक खाकर युवक वहीं तड़प कर गिर गया। उसकी नाक और मुँह से खून का फ़व्वारा बह चला।

अफ़सर ने और एक आदमी को कन्धा लगाने का हुक्म दिया। क्षण भर में पालकी फिर अपनी राह लगी।

(२)

चिराग़ जल चुके थे। दीवाने ख़ास में हज़ारों फ़ानूसों की सब काफ़ूरी मोमबत्तियाँ जल रही थीं। जमुना की लहरों से धुल कर पूर्वी हवा झरोखों से छन-छन कर आ रही थी। ख़ास-ख़ास दरबारी बादशाह सलामत के तशरीफ़ लाने की इन्तज़ारी में अदब से खड़े थे। सामने एक चौकी पर वही युवक लहूलुहान पड़ा था। अन्तःपुर के झरोखों से परिचारिकाओं के कण्ठ-स्वर ने कहा—'होशियार, अदब क़ायदा निगहदार!' यह शब्दस्वर चोबदारों ने दुहराया—'होशियार, अदब क़ायदा निगहदार!' उमराव-मण्डल और मन्त्रि-मण्डल ज़मीन तक सिर झुका कर खड़ा हो गया। सम्पूर्ण दरबार में निस्तब्धता छा गई। धीरे-धीरे वृद्ध सम्राट् बहादुरशाह दो सुन्दरियों के कन्धों का सहारा लिए भीतर ड्योढ़ी से निकल कर सिंहासन पर आ बैठे। चार बाँदियाँ मोरछल लेकर बग़ल में आ खड़ी हुईं। चोबदार ने पुकारा—'ज़िल्ले इलाही बरामद कर्द,मुजरा अदब से!'

यह सुनते ही एक उमराव सहमा हुआ अपने स्थान से आगे बढ़ा और सम्राट् के सामने जाकर उसने तीन बार झुक कर सलाम किया। चोबदार ने उसके रुतबे और शान के

अनुसार कुछ शब्द कहकर सम्राट् का ध्यान उधर आकर्षित किया। इसी प्रकार सभी सरदारों ने प्रणाम किया।

इसके बाद बादशाह ने वज़ीर को सङ्केत किया। वज़ीर ने जवान से कहा—जवान ! तुम्हारे हालात बादशाह सलामत अगर्चे सुन चुके हैं, मगर तुम्हारी ख़ास ज़बान से सुनना चाहते हैं। तमाम हालात विस्तार से बयान करो।

युवक ने ज़मीन में लोट-लोट कर सब मामला बयान किया। बादशाह ने फ़र्माया--सब हरफ़-बहरफ़ सही है। कहाँ है वह ज़ालिम ज़मीर ?

वह खूँख़्वार अफ़सर ज़मीर तख़्त के सामने आकर घुटनों के बल गिर गया।

बादशाह ने फ़र्माया--ज़मीर ! तुझे कुछ कहना है ?

'खुदावन्द ! रहम ! रहम !'

बादशाह ने हुक्म दिया--इस ज़ालिम को सीधा खड़ा करो। मगर ठहरो, मैं इस पर भी रहम किया चाहता हूँ। इसे नौकरी से बरख़ास्त किया जाता है और इसका दर्जा इस नौजवान को अता किया जाता है। इसकी तमाम जायदाद ज़ब्त की जाती है और वह उस कहार के घर वालों को बख़्श दी जाती है।

हुक्म देकर बादशाह उठे। तुरन्त चार बाँदियों ने सहारा दिया। दरबारी लोग जमीन तक झुक गए। बादशाह ने युवक के निकट आकर कहा—आराम होने

तक शाही महलों में रहने की तुम्हें इजाजत बख़्शी जाती है और शाही हकीम तुम्हारे इलाज को मुक़र्रर किए जाते हैं।

युवक ने बादशाह की क़दमबोसी की और पल्ला चूमा। बादशाह धीरे-धीरे अन्तःपुर में प्रवेश कर गए।

(३)

अन्तःपुर के उन झरोखों के भीतर, जहाँ किसी भी मर्द की परछाईं पहुँचनी सम्भव न थी, एक बहुमूल्य मख़मली गद्दे पर वह घायल युवक पड़ा अपने प्रारब्ध-विकास की बात सोच रहा था। एक ही दुखदाई घटना ने, जिसे शायद ही कोई निमन्त्रित करे, उसके भाग्य का पाँसा पलट दिया था। वह सोच रहा था, क्या सचमुच मेरे ये फटे चिथड़े, वह टूटे छप्पर का घर, वह माता का चक्की पीसना, सभी बदल जायगा। वह जागते ही जागते स्वप्न देखने लगा एक धवल अट्टालिका, दास दासी, घोड़े-हाथी, सेना और न जाने क्या-क्या ?

सभी विचार-धाराओं के ऊपर उसे एक नवीन विचार धारा मूर्च्छित कर रही थी—वह कौन है ? वही क्या इन सब भाग्य-परिवर्तन की कुञ्जी नहीं ? पालकी के उस दुर्भेद्य पर्दे के भीतर………… ! वह सोच में मूर्च्छित हो गया।

हठात् उसकी विचार-धारा को धक्का देते हुए कक्ष का पर्दा हटा कर दो साथियों के साथ एक खोजे ने प्रवेश किया। दासियों के हाथ में भोजन की सामग्री थी। स्वप्न सुख की तरह कहीं वह राजभोग लुप्त न हो जाय, घायल युवक इस भय से लपक कर उठा। खोजे ने कहा—खाना खा लो, और खुदा का शुक्र करो। हुजूर शाहज़ादी तुम पर बहुत खुश हैं और वे जल्द तुम्हें देखने को तशरीफ़ लाने वाली हैं।

चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना की तरह शाहज़ादी ने कक्ष में प्रवेश किया। दो अल्प-वयस्का दासियाँ परछाईं की तरह उनके पीछे थीं। शुभ्र, महीन रेशमी परिधान पर ज़रदोज़ी और सलमे का बारीक काम अत्यन्त सुन्दरता से हो रहा था। वह अस्फुटित कुन्दकली के समान, कोमलता और माधुर्य की मूर्त्तिमती रेखा के समान समस्त भारत के सम्राट् की पौत्री शाहज़ादी गुलबानो थी।

केवल क्षणभर ही वह युवक उस अति दुर्लभ सुख की ओर देखने का साहस कर सका। उसने उठने की चेष्टा की, परन्तु मानो उसके शरीर का सत निकल गया था। वह गिर पड़ा, गिरे ही गिरे उसने ज़रा बढ़कर अपना मस्तक शाहज़ादी के क़दमों पर रख दिया। शाहजादी के जूतों में लगे हीरे युवक के मस्तक पर मुकुट की तरह दिप उठे।

शाहज़ादी ने मानो फूल बखेर दिए। उसने कहा—कल

के हादसे से मुझे बहुत रञ्ज है, पर मैं समझती हूँ, अब तुम बहुत अच्छे हो। मैंने पालकी से तमाम माजरा देखा था, मगर क्या कर सकती थी? मैंने दादाजान से आते ही शिकायत कर दी है।

युवक ने ज़रा ऊँचा उठकर शाहज़ादी का आँचल आँखों से लगाया, और बारम्बार ज़मीन चूमकर कहा—हुजूर, खुदावन्द शाहज़ादी, कल अगर हुजूर की पालकी की खाक न नसीब होती तो आज यह दिन कहाँ? जहाँपनाह ने इस नाचीज गुलाम को निहाल कर दिया है। तावेदार ताउम्र इन क़दमों का नमकहलाल रहेगा।

शाहजादी कुछ न कहकर धीरे-धीरे चली गई।

(४)

१२ साल बीत गए। सन् ५७ की १४ वीं मई थी। गदर की आग धू-धू करके जल रही थी। चिनगारियाँ आसमान छू चुकी थीं। निकल्सन ने दिल्ली पर घेरा डाल रक्खा था। भाग्य की रेखा के बल पर बूढ़े और लाचार बादशाह बहादुरशाह ने बाग़ियों का साथ दिया। क्षण-क्षण में बाग़ी हार रहे थे। अङ्गरेज़ी तोपें काश्मीरी दरवाज़े पर गरज रही थीं। लाहौरी दरवाज़ा सर हो चुका था। फ़तहपुरी मस्जिद के सामने अङ्गरेज़ी घुड़सवार और बाग़ियों की लाल होली खेली जा रही थी। लाशों के ढेर में से अधमरे सिपाही चिल्ला रहे

थे। अङ्गरेज़ बराबर बढ़ते और जो मिलता उसे सङ्गीनों से छेदते चले आ रहे थे। करनल वाट्सन के हाथ में कमान थी। इनके साथ थे एक सम्भ्रान्त मुसलमान अमीर—जनाब इलाहीबख़्श। वे एक अरबी नफ़ीस घोड़े पर पान चबाते इतराते बढ़ रहे थे, लोग देख-देखकर भयभीत होकर घरों में छिप रहे थे।

यह इलाहीबख्श वही घायल युवक थे, जो अपनी जवाँमर्दी और चतुराई से १० वर्ष में बादशाह के अमीर और नगर के प्रतिष्ठित तथा प्रभावशाली व्यक्ति बन गए थे। अंगरेजों ने दमदार मुग़लों को जहाँ तोपों और सङ्गीनों की नोक से वश में किया था, वहाँ कुछ नमकहराम, सङ्गदिल लोगों को अपनी भेद-नीति और सोने के टुकड़ों से वश में कर लिया था। इलाहीबख़्श भी उनमें से एक थे। १० वर्ष पहले शाहज़ादी के क़दमों पर गिरकर नमकहलाली की जो बात उन्होंने कही थी, वह अब उन्होंने दरगुज़र कर दी थी। वे अब अङ्गरेजों के भेदिए थे।

दोनों व्यक्ति सराय के सामने जाकर ठहर गए। हौज़ के पास, जहाँ अब घण्टाघर है, बराबर-बराबर फाँसियाँ गड़ी थीं और क्षण-क्षण में चारों तरफ़ गली कूचों से आदमी पकड़ जाकर फाँसी पर चढ़ाए जा रहे थे। कुछ ख़ास क़ैदी इनकी प्रतीक्षा में बँधे बैठे थे। हडसन साहब ने सबको खड़ा होने का हुक्म दिया। इलाहीबख़्श ने उनमें से मुग़ल-

सरदारों और राज-परिवार वालों की शनाख़्त की, सब फाँसी पर लटका दिए गए। इस के बाद, बादशाह क़िले से भाग गए हैं—यह सुनकर एक फौज की टुकड़ी लेकर दोनों तीर की तरह रवाना हुए।

(५)

बादशाह सलामत जल्दी-जल्दी नमाज़ पढ़ रहे थे। उनके हाथ काँप रहे थे और आँखों से आँसुओं की धार बह रही थी। शाहज़ादी गुलबानो ने आकर कहा--बाबाजान ! यह आप क्या कर रहे हैं?

'बेटी अब और कर ही क्या सकता हूं? खुदा से दुआ माँगता हूँ, कहता हूँ—ऐ दुनिया के मालिक ! मेरी मुश्किल आसान कर, यह तख्त, तैमूर के खून का तख्त तो आज गया ही, मेरे बच्चों की जान और आबरू पर रहम बख्श !'

गुलबानो ने कहा--बाबा ! दुश्मन क़िले तक पहुँच चुके हैं। आप के लिये सवारी तैयार है, भागिए !

बादशाह ने अन्धे की तरह शाहज़ादी का हाथ पकड़ कर कहा—भागूँ कहाँ ? हाय ! वह घड़ी अब आ ही गई ?

इसके बाद उन्होंने अपनी जड़ाऊ सन्दूकची मँगाई, और परिवार के सब लोगों को बुलाकर एक-एक मुट्ठी हीरे सब को देकर कहा--खुदा हाफ़िज !

क़िले से निकल कर वादशाह सीधे निज़ामुद्दीन गए। उस वक़्त उनके मुखमण्डल की आभा उतरी हुई थी। कुछ ख़ास-खास ख़्वाजासरा, कहार और इने-गिने शुभ-चिन्तकों के सिवा कोई साथ न था। चिन्ता और भय से वे रह-रह कर काँप रहे थे। उनकी सफ़ेद डाढ़ी धूल से भर रही थी। वादशाह चुपचाप जाकर सीढ़ियों पर बैठ गये।

गुलामहुसैन चिश्ती सुनकर दौड़े आए। वादशाह उन्हें देखते ही खिलखिलाकर हँस पड़े। चिश्ती साहब ने पूछा—ख़ैर तो है ?

'ख़ैर ही है, मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था कि ये वदनसीव ग़दरवाले मनमानी करने वाले हैं। इन पर यक़ीन करना वेवकूफी है, ये खुद डूबेंगे और हमें भी डुबावेंगे। वही हुआ, भाग निकले ! मुझे तो होनहार दिखाई दे गई थी कि मैं मुग़लों का आख़िरी चिराग़ हूँ। मुग़लों के तख़्त का आख़िरी साँस टूट रहा है, कोई घड़ी भर का महमान है। फिर ख़ूनख़रावी क्यों करूँ ? इसी लिए क़िला छोड़कर चला आया। मुल्क ख़ुदा का है, जिसे चाहे दे। सैंकड़ों साल तक हमारे नाम का सिक्का चला। अव हवा का रुख़ कुछ और ही है। वे हुकूमत करेंगे, ताज पहनेंगे। इसमें अफ़सोस क्यों ? हम ने भी तो दूसरों को मिटाकर अपना घर वसाया था ! हाँ, आज तीन दिन से खाना नसीब नहीं हुआ है। कुछ है तो ले आओ ?'

चिश्ती साहब ने कहा—सिर्फ़ बाजरे की रोटी और सिर्कें की चटनी है। हुक्म हो तो हाज़िर करूँ।

'वही ले आओ।'

बादशाह ने शान्तिपूर्वक एक रोटी खा और पानी पीकर कहा—बस, अब हुमायूँ के मक़बरे में चला जाऊँगा, वहाँ जो भाग्य में होगा, वह होगा।

हुमायूँ के मकबरे में हडसन और इलाहीबख़्श ने आकर बादशाह को गिरफ़्तार करके रंगून भेज दिया।

(६)

तीन वर्ष व्यतीत हो गये। दिल्ली में अँगरेज़ी अमल जम कर बैठ गया था। लाल क़िले पर यूनियन जैक फहरा रहा था। फाँसियों की विभीषिकाओं ने नगर और ग्राम की जनता के मन में दहल उत्पन्न कर दी थी। वे दब्बू भेड़ की तरह चुपचाप अँगरेज़ों के विधान को अटल प्रारब्ध की तरह देख और सह रहे थे। इलाहीबख़्श के पास बादशाही बख़्शीश ही बहुत थी, अब अङ्गरेज़ी जागीरों और मेहरबानियों ने उन्हें आधी दिल्ली का मालिक बना दिया था। सरकारी नीलामों में मुहल्ले के मुहल्ले उन्होंने कौड़ियों में पाए थे। उनकी बड़ी भारी अट्टालिका खड़ी मनुष्य के भाग्य पर हँस रही थी। सन्ध्या का समय था। अपनी हवेली के विशाल प्राङ्गण में तख़्त के ऊपर बढ़िया ईरानी क़ालीन पर मसनद के सहारे इलाही-

बख़्श बैठे अम्बरी तमाखू पी रहे थे। दो-चार मुसाहिब सामने अदब से बैठे जी-हुजूरी कर रहे थे। मियाँ जी को, मालूम होता है, बचपन के दिन भूल गए थे। वे बहुत बढ़िया अतलस के अँगरखे पर कमख़ाब की नीमास्तीन पहने थे!

धीरे-धीरे अन्धकार के पर्दे को चीरती हुई एक मूर्त्ति अग्रसर हुई। लोगों ने देखा, एक स्त्री-मूर्त्ति मैला और फटा हुआ बुर्क़ा पहने आ रही है। लोगों ने रोका, मगर उसने सुना नहीं। वह चुपचाप मियाँ इलाहीबख़्श के सन्मुख आ खड़ी हुई।

मियाँ ने पूछा—क्या चाहती हो?

'पनाह'

'कौन हो?'

'आफ़त की मारी!'

'अकेली हो?'

'बिलकुल अकेली!'

'कुछ काम करना जानती हो?'

'बावर्ची का काम सीख लिया है!'

'तनखाह क्या लोगी?'

'एक टुकड़ा रोटी!'

बहुत महीन, दर्द-भरी, कम्पित आवाज़ में इन जवाबों को सुनकर मियाँ इलाहीबख़्श सोच में पड़ गए। थोड़ी देर बाद उन्होंने नौकर को बुलाकर उस स्त्री को भीतर भिजवा

दिया। उस दिन उसी को खाना बनाने का हुक्म हुआ।

मियाँ इलाहीबख़्श दस्तरखान पर बैठे थे। दोस्त-अहबाब का पूरा जमघट था। तब तक दिल्ली में बिजली तारों से नहीं बाँधी गई थी। सुगन्धित मोमबत्तियाँ शमादानों में जल रही थीं।

खाना खाने से सभी खुश हुए। नई बावर्चिन की तारीफ़ के पुल बाँधने लगे। दोस्तों ने कहा—ज़रा उसे बुलाइए और इनाम दीजिए।

इलाहीबख़्श ने बावर्चिन को बुला भेजा। उसने कहा—अपने मालिक से दस्त-बदस्ता अर्ज़ है कि मैं ग़ैर-मर्दों के सामने बेपर्दा नहीं हो सकती। हाँ, आक़ा से पर्दा फ़ज़ूल है। इलाहीबख़्श के मन में प्रतिक्षण बावर्चिन को देखने की बेचैनी बढ़ चली।

सब लोगों के चले जाने पर इलाहीबख़्श स्वयं भीतर गए और बावर्चिन के सामने जा खड़े हुए। बोले–क्या मैं तुम्हारी मुसीबत की दास्तान सुन सकता हूँ? यह तो मैं समझ गया कि तुम शरीफ़ खानदान की दुखियारी हो!

बावर्चिन ने अच्छी तरह अपना बुर्क़ा ओढ़कर कहा—मालिक मेरी कोई दास्तान ही नहीं!

‘क्या मुझ से पर्दा रक्खोगी?’

‘यह मुमकिन नहीं है?’

‘तब?’

'क्या आप मुझे देखना चाहते हैं ?'

'ज़रूर, ज़रूर !'

वह मैला और फटा बुर्क़ा चम्पे की समान उँगलियों ने हटाकर नीचे गिरा दिया। एक पीली किन्तु अभूतपूर्व मूर्त्ति सामने दीख पड़ी।

इलाहीबख्श ने आँखों की धुन्ध हाथों से पोंछकर, ज़रा आगे बढ़कर कहा—तुम्हें, आप को मैंने कहीं देखा है ?

'जी हाँ मेरे आक़ा ! मेरे दादाजान की मेहरबानी से लाल क़िले के भीतर, जब आप मेरी डोली में लगाए जाने के लिए चाबुकों से लहू-लुहान किए गए थे, तब यह बदनसीब गुलबानो आपको तसल्ली देने आपकी खि़दमत में आई थी। उम्मीद थी मर्द औरत की अमानत—ख़ासकर वह अमानत, जो दुनिया की चीज़ नहीं, जिसके दाम जान और कुर्बानी हैं, सम्हाल कर रक्खोगे। पर पीछे यह जानने का कोई ज़रिया ही न रहा कि हजूर ने वह अमानत किस हिफ़ाज़त से कहाँ छिपाकर रक्खी ? ग़दर में वह रही या मेरे बाबाजान के तख्त के साथ वह भी गई ?

इलाहीबख्श का मुँह काला पड़ गया। बदहवासी की हालत में उन के मुँह से निकल पड़ा--आप शाहज़ादी गुलबानो ......?

गुलबानो ने शान्त स्वर में कहा--वही हूँ जनाब ! मगर डरिएगा नहीं ! अगर ग़दर में मेरी अमानत लुट भी गई

होगी, तो वह माँगने जनाब की खिदमत में नहीं आई हूँ। अब गुलबानो शाहज़ादी नहीं, हुजूर की कनीज़ है—महज़ बावर्चिन है! मेरे आक़ा, क्या बाँदी के हाथ का खाना पसन्द आया? क्या बदनसीब गुलबानो की नौकरी बहाल रह सकेगी?

इलाहीबख़्श बेहोश होने लगे। वे सिर पकड़ कर वहीं बैठ गए। गुलबानो ने पंखा लेकर झलते हुए कहा—जनाब के दुश्मनों की तबीयत नासाज़ तो नहीं, क्या किसी को बुलाऊँ?

इलाहीबख़्श ज़मीन पर गिरकर शाहज़ादी का पल्ला चूम कर बोले—शाहज़ादी, माफ़ करना! मैं नमकहराम हूँ।

इलाहीबख़्श भागे। वे चुपचाप घर से निकले। नौकर-चाकर देख रहे थे! उसके बाद किसी ने फिर उन्हें नहीं देखा!

जैनेन्द्र कुमार

"कल की बात है, साहित्य के आकाश पर एक छोटा सा तारा अपना झिलमिलाता प्रकाश लिये हुए उदित हुआ। देखते देखते वह पूर्णिमा के चाँद की भाँति दमक उठेगा इसकी आशा किस ने की थी?"

श्री जैनेन्द्रकुमार ने २४, २५ वर्ष की आयु में लिखना आरम्भ किया और उसी तारे की भाँति पांच छः वर्ष के अर्से में ही हिन्दी के कहानी लेखकों की प्रथम-पंक्ति में आ गए। जैनेन्द्रकुमार युगप्रवर्त्तक लेखक हैं। भाषा में आप ने आते ही क्रान्ति पैदा कर दी। सब प्रकार से आप मौलिक हैं, भाषा से भी, भाव से भी। किन्तु जिस प्रकार बिजली के तेज लैम्प के सामने मिट्टी के दियों का प्रकाश हलका पड़ जाता है, इसी प्रकार जैनेन्द्र के आगमन से हिन्दी के कुछ प्रतिभा रखने वाले युवक लेखक अपना प्रकाश खो बैठे। अंधाधुंध उन्होंने आपकी भाषा की, भावों की, यहां तक कि शब्दों तथा वाक्यों तक की नक़ल की और परिणाम स्वरूप अपनापन भी खो बैठे।

जैनेन्द्र कुमार की कहानियाँ पश्चिमी कहानियों की तर्ज़ पर हैं। जिस भाव को लेते हैं, उसे इतना बयान करते हैं, उसकी ज़रा सी बात का ऐसा वर्णन करते हैं कि उसका पूरा पूरा चित्र आंखों के सामने खिंच जाता

है। कहानियां आपकी घटना-प्रधान न होकर विचार-प्रधान होती हैं।

वातायन, फांसी, एक रात, दो चिड़ियां नाम से आप के कई कहानी-संग्रह निकले हैं। परख, सुनीता और त्यागपत्र आपके तीन उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

दुर्भाग्य की बात यह है, कि जिस तेज़ी से आप कहानी क्षेत्र में आए थे, उसी तेज़ी से निकले जा रहे हैं। हाल ही में आप कहानी लिखना छोड़ विचारक का रूप धारण कर रहे हैं और 'जैनेन्द्र के विचार' नाम से आपके विचारों का एक संग्रह उज्जैन के प्रो० प्रभाकर माचवे के सम्पादकत्व में निकला है।

जैनेन्द्र जी का जन्म १६०५ में कौड़ियागंज (अलीगढ़) में हुआ पर आजकल आप अपने परिवार सहित दरियागंज दिल्ली में रहते हैं और शुद्ध साहित्य-सेवा करते हैं।

'अपना अपना भाग्य' जैनेन्द्र जी की अत्यन्त सुन्दर मर्मस्पर्शी रचना है। पढ़ते पढ़ते हृदय मुँह को आ जाता है, और पत्थर से पत्थर-दिल का कंठ भी घुट घुट आने को हो जाता है।

अपना अपना भाग्य

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर हम सड़क के किनारे की बेंच पर बैठ गए।

नैनीताल की सन्ध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे से, भाप से, बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेरोक घूम रहे थे। हलके प्रकाश और अँधियारी से रँगकर कभी वे नीले दीखते, कभी सफ़ेद और फिर ज़रा देर में अरुण पड़ जाते। वे जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।

पीछे हमारे पोलोवाला मैदान फैला था। सामने अँग्रेज़ों का एक प्रमोद-गृह था, जहाँ सुहावना रसीला बाजा बज रहा था और पार्श्व में था वही सुरम्य अनुपम नैनीताल।

ताल में किश्तियाँ अपने सफेद पाल उड़ाती हुई एक दो अँगरेज़ यात्रियों को लेकर, इधर से उधर खेल रही थीं और कहीं कुछ अँग्रेज एक-एक लक्ष्य सामने प्रतिस्थापित कर, अपनी सूई सी शकल की डोंगियों को मानों शर्त बाँधकर सर-पट दौड़ा रहे थे। कहीं किनारे पर कुछ साहब अपनी बन्सी

पानी में डाल सधैर्य, एकाग्र, एकस्थ, एकनिष्ठ मछली चिन्तन कर रहे थे।

पीछे पोलो-लॉन में बच्चे किलकारियाँ भरते हुए हॉकी खेल रहे थे। शोर, मार-पीट, गाली गलौज भी जैसे खेल का ही अंश था। इस तमाम खेल को उतने क्षणों का उद्देश्य बना, वे बालक अपना सारा मन, सारी देह, समग्र बल और समूची विद्या लगाकर मानो ख़त्म कर देना चाहते थे। उन्हें आगे की चिन्ता न थी, बीते का ख्याल न था। वे शुद्ध तत्काल के प्राणी थे। वे शब्द की सम्पूर्ण सचाई के साथ जीवित थे।

सड़क पर से नर-नारियों का अविरत प्रवाह आ रहा था और जा रहा था। उसका न ओर था न छोर। यह प्रवाह कहाँ जा रहा था और कहाँ से आ रहा था, कौन बता सकता है? सब उम्र के सब तरह के लोग उसमें थे। मानों मनुष्यता के नमूनों का बाज़ार, सजकर, सामने से इठलाता चला जा रहा हो।

अधिकार-गर्व में तने अँग्रेज़ उसमें थे, और चिथड़ों से सजे, घोड़ों की बाग थामे वे पहाड़ी उसमें थे, जिन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को कुचलकर शून्य बना लिया है, और जो बड़ी तत्परता से दुम हिलाना सीख गये हैं।

भागते, खेलते, हँसते, शरारत करते, लाल-लाल अँग्रेज़ बच्चे थे और पीली-पीली आँखें फाड़े, पिता की उँगली पकड़ कर चलते हुए अपने नौनिहाल भी थे।

अँग्रेज़ पिता थे, जो अपने बच्चों के साथ भाग रहे थे, हँस रहे थे और खेल रहे थे। उधर भारतीय पितृदेव भी थे, जो बुज़ुर्गी को चारों तरफ़ लपेटे धन-सम्पन्नता के लक्षणों का प्रदर्शन करते हुए चल रहे थे।

अँग्रेज़ रमणियाँ थीं, जो धीरे नहीं चलती थीं, तेज़ चलती थीं। उन्हें न चलने में थकावट आती थी, न हँसने में लाज आती थी। कसरत के नाम पर घोड़ों पर भी बैठ सकती थीं, और घोड़ों के साथ ही साथ, ज़रा जी होते ही, किसी हिन्दुस्तानी पर भी कोड़े फटकार सकती थीं। वह दो-दो, तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में निश्शंक, निरापद, इस प्रवाह में मानों अपने स्थान को जानती हुई, सड़क पर से चली जा रही थीं।

उधर हमारी भारत की कुल लक्ष्मियाँ, सड़क के बिलकुल किनारे-किनारे, दामन बचातीं और सम्हालती हुईं, साड़ी की कई तहों में सिमट-सिमट कर, लोक लाज, स्त्रीत्व और भारतीय गरिमा के आदर्श को अपने परिवेष्टनों में छिपाकर, सहमी-सहमी धरती में आँखें गाड़े, कदम-कदम बढ़ रही थीं।

इसके साथ ही भारतीय का एक और नमूना था। अपने कालेपन को खुरच-खुरच कर बहा देने की इच्छा करने वाले अँग्रेज़ी-दाँ पुरुषोपम भी थे, जो नेटिव को देखकर मुँह फेर लेते थे और अँग्रेज़ को देखकर आँखें बिछा देते थे, और दुम हिलाने लगते थे। वैसे वह अकड़कर चलते थे, मानों भारत-

भूमि को इसी सड़क के साथ कुचल-कुचलकर चलने का उन्हें अधिकार मिला है।

(२)

घण्टे के घण्टे सरक गए। अन्धकार गाढ़ा हो गया। बादल सफ़ेद होकर जम गए। मनुष्यों का वह ताँता एक-एक कर क्षीण हो गया। अब इक्का-दुक्का आदमी सड़क पर छतरी लगाकर निकल रहा था। हम वहीं-के वहीं बैठे थे। सर्दी सी मालूम हुई। हमारे ओवरकोट भीग गये थे।

पीछे फिरकर देखा। वह लॉन वर्फ़ की चादर की तरह बिल्कुल स्तब्ध और सुन्न पड़ा था।

सब सन्नाटा था। तल्लीताल की बिजली की रोशनियाँ दीप-मालिका सी जगमगा रही थीं। वह जगमगाहट दो मील तक फैले हुए प्रकृति के जल-दर्पण पर प्रतिबिम्बित हो रही थी। और दर्पण का काँपता हुआ, लहरें लेता हुआ वह तल उन प्रतिबिम्बों को सौ गुणा हज़ार गुणा करके, उनके प्रकाश को मानों एकत्र और पूंजीभूत करके व्याप्त कर रहा था। पहाड़ों के सिर पर की रोशनियाँ तारों सी जान पड़ती थीं।

हमारे देखते-देखते एक घने पर्दे ने आकर इन सबको ढँक दिया। रोशनियाँ मानों मर गईं। जगमगाहट लुप्त हो गई। वह काले-काले भूत से पहाड़ भी इस सफ़ेद पर्दे के पीछे छिप गए। पास की वस्तु भी न दीखने लगी। मानों यह घनीभूत प्रलय थी। सब कुछ इस घनी, गहरी सफ़ेदी में दब

गया। जैसे एक शुभ्र महासागर ने फैलकर संसृति के सारे आस्तित्व को डुबो दिया हो। ऊपर नीचे, चारों तरफ़, वह निर्भेद्य सफ़ेद शून्यता ही फैली हुई थी।

ऐसा घना कुहरा हमने कभी न देखा था। वह टप-टप टपक रहा था।

मार्ग अब बिलकुल निर्जन, चुप था। वह प्रवाह न जाने किन घोंसलों में जा छिपा था।

उस बृहदाकार शुभ्र शून्य में, कहीं से ग्यारह बार टन्-टन् हो उठा। जैसे कहीं दूर कब्र में से आवाज़ आ रही हो!

हम अपने-अपने होटलों के लिए चल दिये।

(३)

रास्ते में दो मित्रों का होटल मिला। दोनों वकील मित्र छुट्टी लेकर चले गये। हम दोनों आगे बढ़े। हमारा होटल आगे था।

ताल किनारे-किनारे हम चले जा रहे थे। हमारे ओवर-कोट तर हो गये थे। बारिश नहीं मालूम होती थी, पर वहाँ तो ऊपर-नीचे हवा के कण-कण में बारिश थी। सर्दी इतनी थी कि सोचा, एक कम्बल होता तो अच्छा होता।

रास्ते में ताल के बिल्कुल किनारे पर बेंच पड़ी थी। मैं जी में बेचैन हो रहा था। झटपट होटल पहुँचकर, इन भीगे कपड़ों से छुट्टी पा, गरम बिस्तरे में छिपकर सो रहना चाहता था। पर साथ के मित्र की सनक कब उठेगी, और कब थमेगी—इसका क्या कुछ ठिकाना है! और वह कैसी क्या

होगी—इसका भी कुछ अन्दाज़ है ! उन्होंने कहा—आओ, ज़रा यहाँ बैठें।

हम उस चूते कुहरे में रात के ठीक एक बजे तालाब के किनारे की उस भीगी, बर्फ़ीली, ठण्डी हो रही लोहे की बेंच पर बैठ गये।

५—१०—१५ मिनट हो गए। मित्र के उठने का इरादा न मालूम हुआ। मैंने खिझला कर कहा—

चलिए भी........

अरे ! ज़रा बैठो भी........

हाथ पकड़कर ज़रा बैठने के लिए जब ज़ोर से बैठा लिया गया तो और चारा न रहा—लाचार बैठे रहना पड़ा। सनक से छुटकारा आसान न था, और यह ज़रा बैठना भी ज़रा न था।

चुप-चुप बैठे तंग हो रहा था, कुढ़ रहा था कि मित्र अचानक बोले—

देखो, वह क्या है ?

मैंने देखा—कुहरे की सफ़ेदी में कुछ ही हाथ दूर से एक काली सी मूरत हमारी तरफ़ बढ़ी आ रही थी। मैंने कहा—होगा कोई।

तीन गज़ दूरी से दीख पड़ा, एक लड़का सिर के बड़े बड़े बालों को खुजलाता हुआ चला आ रहा है। नंगे पैर हैं, नंगे सिर। एक मैली-सी कमीज़ लटकाये है।

पैर उसके न जाने कहाँ पड़ रहे थे, और वह न जाने कहाँ जा रहा है—कहाँ जाना चाहता है ! उसके क़दमों में जैसे कोई न अगला है, न पिछला है, न दायाँ है, न बायाँ है।

पास की चुंगी की लालटैन के छोटे से प्रकाश-वृत्त में देखा—कोई दस बरस का होगा। गोरे रंग का है, पर मैल से काला पड़ गया है, आँखें अच्छी बड़ी पर सूनी हैं। माथा जैसे अभी झुर्रियाँ खा गया है।

वह हमें न देख पाया। वह जैसे कुछ भी नहीं देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों तरफ़ फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब और न बाक़ी दुनिया। वह बस अपने विकट वर्तमान को देख रहा था।

मित्र ने आवाज़ दी—-ए !

उसने जैसे जागकर देखा और पास आ गया।

तू कहाँ जा रहा है रे ?

उसने अपनी सूनी आँखें फाड़ दीं।

दुनिया सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है ?

बालक मौन-मूक, फिर भी बोलता हुआ चेहरा लेकर खड़ा रहा।

कहाँ सोयेगा ?

यहीं कहीं।

कल कहाँ सोया था ?

दुकान पर।

आज वहाँ क्यों नहीं ?

नौकरी से हटा दिया।

क्या नौकरी थी ?

सब काम एक रुपया और जूठा खाना।

फिर नौकरी करेगा ?

हाँ......।

बाहर चलेगा ?

हाँ......।

आज क्या खाना खाया ?

कुछ नहीं।

अब खाना मिलेगा ?

नहीं मिलेगा।

यों ही सो जायगा ?

हाँ......।

कहाँ ?

यहीं कहीं।

इन्हीं कपड़ों से ?

बालक फिर आँखों से बोलकर मूक खड़ा रहा। आँखें मानों बोलती थीं—यह भी कैसा मूर्ख प्रश्न !

माँ-बाप हैं ?

हैं।

कहाँ ?

१५ कोस दूर गाँव में।

तू भाग आया ?

हाँ।

क्यों ?

मेरे कई छोटे भाई-बहन हैं,—सो भाग आया। वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था और मारता था। माँ भूखी रहती थी और रोती थी। सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गाँव का था—मुझ से बड़ा। दोनों साथ यहाँ आये। वह अब नहीं है।

कहाँ गया ?

मर गया।

इस ज़रा-सी उम्र में ही इसकी मौत से पहचान हो गई! मुझे अचरज हुआ, दर्द हुआ, पूछा—मर गया ?

साहब ने मारा, मर गया ?

अच्छा हमारे साथ चल।

वह साथ चल दिया। लौटकर हम वकील दोस्तों के होटल में पहुँचे।

वकील साहब!

वकील लोग, होटल के ऊपर के कमरे से उतरकर आये। काश्मीरी दोशाला लपेटे थे, मोज़े-चढ़े पैरों में चप्पल थीं। स्वर में हलकी सी झुँझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

ओ-हो, फिर आप! कहिए ?

आप को नौकर की ज़रूरत थी न ?—देखिए, यह लड़का है!

कहाँ से लाये ? इसे आप जानते हैं !

जानता हूँ—यह बेईमान नहीं हो सकता।

अजी यह पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुन छिपे रहते हैं। आप भी क्या अजीब हैं--उठा लाये कहीं से, 'लो जी, यह नौकर।'

मानिए, तो, यह लड़का अच्छा निकलेगा।

आप भी…जी, बस खूब हैं। ऐरे ग़ैरे को नौकर बना लिया जाय और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चम्पत हो जाय।

आप मानते ही नहीं, मैं क्या करूँ !

मानें क्या खाक ? आप भी…जी अच्छा मज़ाक करते हैं !…अच्छा, अब हम सोने जाते हैं।

और वह चार रुपये रोज़ के किराये वाले कमरे में सजी मसहरी पर सोने झटपट चले गए।

(४)

वकील साहब के चले जाने पर होटल के बाहर आकर मित्र ने अपनी जेब में हाथ डालकर टटोला। पर झट कुछ निराश भाव से हाथ बाहर कर वे मेरी ओर देखने लगे।

'क्या है ?'—मैंने पूछा।

'इसे खाने के लिए कुछ देना चाहता था।' अँग्रेजी में मित्र ने कहा--'मगर दस-दस के नोट हैं।'

नोट ही शायद मेरे पास हैं,—देखूँ ?

सचमुच मेरी जेब में भी नोट ही थे। हम फिर अँग्रेजी में बोलने लगे। लड़के के दाँत बीच-बीच में कटकटा उठते थे। कड़ाके की सर्दी थी।

मित्र ने पूछा—तब ?

मैंने कहा—दस का नोट ही दे दो। सकपकाकर मित्र मेरा मुँह देखने लगे—अरे यार ! बजट बिगड़ जायगा। हृदय में जितनी दया है, पास में उतने पैसे तो नहीं।

तो जाने दो, यह दया ही इस ज़माने में बहुत है।

मित्र चुप रहे। जैसे कुछ सोचते रहे। फिर लड़के से बोले-

अब आज तो कुछ नहीं हो सकता। कल मिलना ! वह 'होटल-डि-पव' जानता है ? वहीं कल १० बजे मिलेगा ?

हाँ...कुछ काम देंगे हजूर ?

हाँ-हाँ, ढूँढ़ दूँगा।

'तो जाऊँ ?' लड़के ने निराश आशा से पूछा !

हाँ—ठण्डी साँस खींचकर फिर मित्र ने पूछा-कहाँ सोएगा ?

यहीं-कहीं, बेंच पर, पेड़ के नीचे-किसी दुकान की भट्टी में।

बालक कुछ ठहरा। मैं असमंजस में रहा। तब वह प्रेत-गति से एक ओर बढ़ा और कुहरे से मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। हवा तीखी थी-हमारे कोटों को पारकर बदन में तीर-सी लगती थी।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कहा--भयानक शीत है। उसके पास कम--बहुत कम कपड़े···!

‘यह संसार है यार’ मैंने स्वार्थ की फ़िलासफ़ी सुनाई । चलो, पहले विस्तर में गर्म हो लो, फिर किसी और की चिन्ता करना ।

उदास होकर मित्र ने कहा--स्वार्थ ! जो कहो, लाचारी कहो, निठुराई कहो—या वेहयाई !

* * * *

दूसरे दिन नैनीताल स्वर्ग के किसी काले गुलाम पशु के दुलार का वह वेटा—वह वालक, निश्चित समय पर हमारे ‘होटल-डि-पव’ में नहीं आया । हम अपनी नैनीताली सैर खुशी-खुशी ख़तम कर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाते बैठ रहने की ज़रूरत हमने न समझी ।

मोटर में सवार होने ही को थे कि यह समाचार मिला—पिछली रात, एक पहाड़ी वालक, सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे ठिठुरकर मर गया ।

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस वरस की उम्र और वही काले चिथड़ों की कमीज़ मिली ! आदमियों की दुनिया ने वस यही उपहार उसके पास छोड़ा था ।

पर वताने वालों ने वताया कि गरीव के मुँह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर वरफ़ की हलकी सी चादर चिपक गई थी । मानों दुनिया की वेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफ़ेद और ठण्डे कफ़न का प्रबन्ध कर दिया था !

सव सुना और सोचा—अपना-अपना भाग्य ।

श्री राजेश्वरप्रसाद सिंह

आप इलाहाबाद के रहने वाले हैं। इस समय आपकी आयु ३३, ३४ वर्ष के लगभग होगी। पहले आप प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक पत्र लीडर के सम्पादन विभाग में काम करते थे पर अब उस से अलग होकर स्वतन्त्र रूप से साहित्य-सेवा कर रहे हैं। आपकी भाषा बड़ी लालित्यपूर्ण होती है। पढ़ने में आनन्द आ जाता है। पग पग पर अलंकार और उपमाएं बखेरते जाते हैं जैसे कोई अपने पीछे हीरे मोती बखेरता जाए। सामाजिक दुर्बलताओं पर ही आप अपनी कहानियों की नींव रखते हैं।

आपका एक उपन्यास और एक गल्प-संग्रह प्रकाशित हो रहा है।

आदर्श

नाई के हथियारों में छुरे का जो स्थान है, समाज-सुधारक के अस्त्रों में उसकी ज़बान का वही स्थान है ! सुधारक में चाहे और कोई गुण हों या न हों, वाक्शक्ति अत्यधिक होनी चाहिए । बाबू चोखेलाल इस लोक-प्रिय सिद्धान्त से भली-भांति परिचित थे । बाबू साहब के जीवन का अन्तिम ध्येय समाज-सुधार ही था । इसी लिए दफ़्तर के काम से जो समय बचता, उसे आप अपनी तर्कशक्ति बढ़ाने में ही लगाते थे । मित्र-मंडली में आपकी ज़बान खुलते ही दूसरों की जिह्वा मूक हो जाती थी । अपनी बातों से आप अपने मित्रों को मुग्ध कर रखते थे । आप को इस बात का गर्व था कि वाद-विवाद में आप को कभी कोई पराजित नहीं कर सका । इस बात पर किसी को सन्देह न था, सन्देह करने का किसी को अधिकार भी न था । किन्तु बाह्य संसार का यह विजयी योद्धा घर के सीमा-प्रान्त में पैर रखते ही भीगी बिल्ली बन

जाता था। घर में तर्क-वितर्क से काम न चलता, यहां न उक्ति काम देती, न प्रमाण। पशु-बल का भी यहां गुज़र न था। विनय का जवाब व्यंग्य में मिलता, टेढ़ी नज़र का आँसुओं से। बाबू साहब पर व्यंग्य का तो कुछ असर न होता, क्योंकि निश्चय में दृढ़ता आती थी, किन्तु आँसू देखते ही आप घबड़ा उठते थे, क्योंकि वे निर्दिष्ट पथ से विचलित करते थे।

सन्ध्या का समय था। बाबू साहब स्त्रियों को मेलों-ठेलों में ले जाने की कुरीति पर बहस करके अभी घर लौटे थे। आप की सहधर्मिणी रामप्यारी देवी रसोई-घर में तरकारी बना रही थीं, पति को देखते ही कलछुली चलाती हुई बोलीं-कल दसहरा है।

चोखेलाल ने अन्यमनस्कता से कहा—सुनता तो हूं।

'सुन तो तुम हमेशा लेते हो। हां, याद रखना नहीं जानते। एक कान से सुना दूसरे से निकाल दिया।'

बाबू साहब समझ गए कि यह किस प्रसंग की भूमिका है। उन्होंने सतर्क होकर दृढ़ता से कहा—तो क्या हर बात की माला जपता रहूं कि याद रहे?

'माला तुम क्या जपोगे। भगवान् का नाम लेने के लिये तो जपते ही नहीं, यह तो मामूली बात है। अब तो 'धरम-करम' दुनिया से उठ ही गया। अब क्या है?'

चोखेलाल को दम्पति-जीवन से केवल एक शिकायत थी,

और वह थी रामप्यारी की संकीर्णता। जिस विषय पर देवी जी के अपने स्वतन्त्र विचार थे, उस पर बाबू साहब का अपने निजी विचार रखना परेशानी में पड़ना था। स्त्री का दृष्टि-क्षेत्र विस्तीर्ण करने के लिए पतिदेव ने अक्सर प्रयत्न किए; परन्तु कभी सफल नहीं हुए। धर्म के विषय पर चोखेलाल रामप्यारी से आज तक किसी प्रकार का समझौता नहीं कर सके थे, इस लिए यह प्रसंग छिड़ते ही उन के हृदय में रामप्यारी के प्रति अप्रसन्नता का भाव उठा था। अब रामप्यारी के व्यंग्य-वाक्यों ने अप्रसन्नता को क्रोध में परिणत कर दिया। चोखेलाल ने चिढ़कर कहा—मैं तुम से धर्म का सबक पढ़ने नहीं आया हूँ।

आग में जल का एक छींटा पड़ा! रामप्यारी ने झमक कर कहा—'तुम्हें क्या पढ़ायेगा कोई, तुम तो आप ही सब पढ़ बैठे हो।'

बाबू साहब झल्लाकर बोले—तुम्हारे मारे नाक में दम है। तुम्हारी जो बातें हैं, सब बे-सिर-पैर की, न इधर चलती हो न उधर।

'मेरी बातें तो सब बे-सिर-पैर की होती हैं! और तुम्हारी तो सब अजूबा होती हैं?'

'भई, जी न खाया करो, कहो घर में आया करूँ, कहो न आया करूं।'

'हां, घर में क्यों आओगे? यहां तुम्हारा बैठा ही कौन है?'

चोखेलाल ने लालटेन उठाई, और बाहर जाकर अपने कमरे में प्रवेश किया। लालटेन एक ओर रखकर उन्होंने एक लम्बी साँस ली, कपड़े उतारे और तख़्ते पर पड़ी हुई चटाई पर लेटकर छत की ओर शून्य दृष्टि से ताकने लगे। आज उन्हें नवयौवन के उन दिनों की बात याद आने लगी, जब वे एक ऐसी संगिनी की कल्पना करते थे, जो जीवन-पथ पर उनके कंधे से कंधा मिलाकर चल सके! जिन स्वप्नों की सृष्टि में यौवन की सारी शक्ति खर्च हो जाती है और कदाचित् जिन की पूर्ति के द्वारा मनुष्य को अक्षय आनन्द प्राप्त हो सकता है, वे इतने अनित्य क्यों हैं, उस आत्म-वेदना की दशा में इस प्रश्न पर विचार करते करते उन्हें ऐसा ज्ञान होने लगा मानो संसार में उनका जन्म व्यर्थ हुआ। उनके अन्तर्देश में जीवन के प्रति उदासीनता का तिमिर छा गया।

कार्य-सिद्धि के लिये रामप्यारी ने जिस उपाय की शरण ली थी, उसके अनौचित्य का अब उसे ज्ञान हुआ किन्तु, अपनी भूल से उसे पश्चात्ताप नहीं हुआ, पति पर क्रोध आया। विजयी-सैनिक पराजित शत्रु की किसी अवहेलना पर ध्यान नहीं देता, किन्तु असफल एक-एक बात याद करता है और झीक उठता है! क्या स्त्री की मान रक्षा करना पति का धर्म नहीं? फिर वे पग पग पर उसकी अवहेलना क्यों करते हैं, सीधे-मुँह बात क्यों नहीं करते? रामप्यारी रोटी सेंक रही थी। कुछ रोटियाँ जल गईं, कुछ कच्ची

रह गईं। जैसे-तैसे खाना बनाकर वह रसोई से बाहर निकली, स्नान किया, साड़ी बदली, और सहन में पड़ी हुई चौकी पर बैठकर पति की प्रतीक्षा करने लगी; किन्तु जब इस तरह पन्द्रह मिनट बीत गए और शत्रु की ओर से सन्धि का कोई प्रस्ताव न हुआ, तब स्वयं दबना उचित जान पड़ा। उसे भय हुआ कि कहीं वे बिना खाए ही न सो जांय। एक मिनट में वह बाहरी बैठक में थी।

'आज खाना न खाओगे क्या !'

'नहीं' दीवार की ओर मुख किए हुए चोखेलाल ने उत्तर दिया।

'क्यों ?'

'भूख नहीं है।'

'क्यों भूख नहीं है ?'

'ऐसे ही।'

'तो क्या बिलकुल न खाओगे ?

'नहीं।'

'अच्छी बात है न खाओ।'

आवेश में आकर रामप्यारी कमरे से बाहर चली गई। वह जानती थी कि भूख न होने की बात एक-दम झूठ है, किन्तु इस समय अनुनय विनय न कर सकी। इस समय विशेष नम्रता दिखाना अपनी हेठी कराना होता। क्या उसे पति से शिकायत का मौक़ा न था ? उसे ऐसा जान पड़ने

लगा, मानो इस समय उसका घोर अपमान किया गया है। रामप्यारी की आंखों में आंसू छलक आए। वह शयनागार में गई, पलंग पर गिर पड़ी और तकिए में मुँह छिपाकर फफक-फफक कर रोने लगी। उसके प्रताड़ित हृदय पर रोष और गर्व के भाव चोटें करने लगे। वे उसे कौन सा सुख दे रहे हैं। जिसका ऐसा कुटिल मूल्य लेते हैं ? आज तक एक छल्ला भी लाकर नहीं दिया, जो गहने मायके से लाई थी उन्हें भी तो नहीं पहनने पाती ! फिर उन्हें किस बात का तमतमा है ? उसे ऐसे पति को सौंपकर उसके माता पिता ने उस पर कैसा घोर अन्याय किया !

चोखेलाल का विचार था कि रामप्यारी अनुनय करेगी, इसी लिए उन्होंने अन्यमनस्कता का भाव धारण किया था। यह बात न थी कि उन्हें भूख न रही हो, पेट में चूहों की दौड़ बराबर जारी थी, किन्तु रूठा हुआ बालक बिना मनाए कैसे घर जाय ? पांसा उलटा पड़ा। उसने विनय न की, यों ही चली गई। तब उन्हें स्त्री के अन्तिम वाक्य याद आए–'अच्छी बात है, न खाओ'। इन वाक्यों में जो चेतावनी छिपी हुई थी, उसमें सन्धि स्थापन की इच्छा नहीं, बल्कि पुनर्द्वन्द्व की चुनौती थी, चोखेलाल उन आने वाले दिनों की कल्पना कर के सिहर उठे। जब वे एक ही घर में बेगानों की तरह रहेंगे, जब रामप्यारी एक ओर जायगी और वह दूसरी ओर, जब इच्छा रहते हुए भी वे एक दूसरे से वार्तालाप न कर सकेंगे, जब

घर की शान्ति श्री उठ जायगी और गृहस्थी एक-दम चौपट हो जायगी ।

दस मिनट के बाद चोखेलाल शयनागार के सामने गए । रामप्यारी का ध्यान आकृष्ट करने के लिए कमरे में प्रवेश करते समय उन्होंने खुले हुए किवाड़ को धक्का दिया, किन्तु वह दीवार की ओर मुख किए हुए लेटी ही रही, हिली भी नहीं । चोखेलाल समझ गए कि वह सो नहीं रही है । वह एक क्षण कमरे के मध्य में खड़े-खड़े पलंग पर मुंह के बल पड़ी हुई रामप्यारी की ओर देखते रहे, फिर धीरे-धीरे मुस्कराते हुए उस पलंग की ओर बढ़े जिस पर नन्हा शिशु रमेश बाल्यकाल की मीठी नींद के मज़े ले रहा था । पलंग के निकट पहुँच कर चोखेलाल ने चुटकी काटी । रमेश चीख उठा । रामप्यारी फिर भी जैसी की तैसी पड़ी रही । रमेश को गोद में लेकर चोखेलाल उसे चुमकारने और थपकियाँ देने लगे, फिर रामप्यारी के पलंग पर जा बैठे । रमेश पिता की गोद से उतर कर माता की ओर रोता हुआ लपका और मां की पीठ से लिपट कर उछलने लगा । रामप्यारी ने दीवार की ओर करवट ली और दाहिना हाथ पीछे ले जाकर रमेश को खींच लिया । मां के पास जाते ही रमेश शान्त हो गया । स्त्री के कंधे पर हाथ रखकर पतिदेव ने पूछा—'खाना न खिलाओगी, रमेश की मां !

पति का हाथ झटक कर रामप्यारी ने रुँधे हुए कण्ठ से

कहा—मुझे तुम्हारे खाने की जरूरत नहीं है।

रामप्यारी को बलपूर्वक अपनी ओर खींचकर चोखेलाल ने देखा, उसकी आंखों में अश्रु-धाराएं बह रही हैं। तब उन्होंने उसे हृदय से लगा लिया और अपनी धोती के कोर से उसके आँसू पोंछते हुए बोले—तुम तो ज़रा-ज़रा सी बात में रोने लगती हो।

रामप्यारी ने सिसकते हुए कहा—आदमी इत...नी हँसी कर...ता है कि हँसी आ...ये न कि......!

'छेड़ा तो पहले तुम्हीं ने था ?

रामप्यारी चिटक कर तीव्र स्वर से बोली–'मैंने तो नहीं, तुम ने ही पहले छेड़ा था।'

मामला फिर बढ़ता देखकर चोखेलाल ने नीति से काम लिया—खैर जाने दो, मेरा ही क़सूर सही। इन बातों में क्या रक्खा है ?

'मैं तो कुछ नहीं कह रही हूँ। तुम्हीं फिर छेड़ रहे हो, और अभी फिर मुझी को दोषी ठहराओगे।'

'अच्छा बाबा, मैं अपना क़सूर माने लेता हूँ। सारा दोष मेरा है, तुम बिलकुल निर्दोष हो, अब तो खुश हुईं ?

विजय-गर्व से रामप्यारी की आँखें चमकने लगीं, और उस के मुख-मण्डल पर एक दिव्य मुसकान नृत्य करने लगी समझौता हो गया !

घर में फिर शान्ति राज्य करने लगी। भोजन हो चुका

था, चोखेलाल घर में बैठे हुए हुक्का पी रहे थे। इस समय उनकी दशा उस जवान मांझी की सी थी जो अपनी छोटी सी डोंगी में बैठा हुआ डांड चलाता और मलार गाता हो! उनके चेहरे से आनन्द और सन्तोष की रेखाएं प्रस्फुटित हो रही थीं। रामप्यारी रमेश को लेकर आई, और उसे पति की गोद में बिठा दिया। चोखेलाल बच्चे के साथ खेलने लगे, कभी उसे चूमते, कभी उछालते, कभी हँसाते। रमेश भी कभी हुक्के की निगाली के सहारे खड़े होने की कोशिश करता, कभी पिता की मूंछें पकड़ कर खींचता, कभी किलकारियां मारता हुआ माता की ओर लपकता। रमेश को आंचल से ढककर रामप्यारी ने कहा—कल मेला देखने के लिए क्या कहते हो? लिवा चलोगे न?

फिर वहीं बात छिड़ गई! किन्तु सांप का काटा रस्सी से भी डरता है। चोखेलाल ने इस बार नम्रता से कहा—लिवा चलने को तो मैं तैयार हूँ, लेकिन मेरी समझ में औरतों का मेले पर जाना ठीक नहीं होता। और फिर इस साल झगड़ा हो जाने का भी डर है।

सभी तो जा रहे हैं। प्यारेलाल का सारा घर जा रहा है। कोई मेरा ही झव्वा नोच लेगा।

'अगर दूसरे भाड़ में कूदें, तो तुम भी कूदो! यह कहां की बुद्धिमानी है?'

'चाहे जो हो, मैं तो ज़रूर जाऊँगी।'

'अच्छी बात है, चलो। तुम तो हमेशा अपने मन की करती ही हो।' रामप्यारी की इच्छा-शक्ति से युद्ध करने के लिए चोखेलाल के पास न तो अब साहस था न बल।

चोखेलाल बड़े धर्म-संकट में पड़ गए। एक ओर चिरसञ्चित सिद्धान्त था, दूसरी ओर स्त्री की मान-रक्षा का विचार। एक से मुँह मोड़ने में जगहँसाई थी, दूसरे से मुँह मोड़ने में नित्य की बमचख़, आए दिन के ताने और उलाहने। बाह्य संसार में परास्त होने पर घर में शरण मिल सकती है, किन्तु घर के निर्वासित को बाहर कोई नहीं पूछता। वे कोई ऐसा सुगम उपाय सोचने लगे, जिससे न सिद्धान्त की अवहेलना हो, न रामप्यारी की।

(२)

विजयदशमी का दिन था। दिन के तीन बजे थे। इक्कों के अड्डे पर बाबू चोखेलाल एक इक्के वाले से किराया तय कर रहे थे। इक्केवाले ने कहा—'बाबू साहब, बारह आने से कम न होगा। जी चाहे चलिए, जी चाहे न चलिए।'

'बारह आने तो, भाई बहुत होते हैं। आठ आने लो।'

'नहीं, बाबू, आज बारह आने से कम नहीं हो सकता।'

इतने में एक साहब दूर ही से 'इक्केवाले, चौक चलोगे? चौक चलोगे?' की हांक लगाते हुए आते दिखाई दिए। निकट पहुँच कर आगन्तुक सज्जन ने चोखेलाल को नमस्कार

किया। चोखेलाल ने नमस्कार का उत्तर दिया। तब आगन्तुक महाशय ने दाँत निकाल कर पूछा--कहां की तैयारी है, जनाब?

चोखेलाल ने मुंह बनाकर उदासीनता से कहा--ज़रा हकीम जी के यहां जाना है।

'क्यों, क्यों? भई, खैरियत तो है?'

'घर में कुछ तबीयत खराब हो गई है।'

चोखेलाल की ओर एक बार अविश्वास से देखकर वे महाशय आगे बढ़े और एक दूसरे इक्के वाले से बातें करने लगे। चोखेलाल की जान छूटी। एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ कर वे इक्के पर सवार हुए, और घर की ओर चले। वे नवयुग की क्रान्ति के अनुयायी अवश्य थे, किन्तु इस समय उनके हृदय में सन्देह उत्पन्न होने लगा। इस मुठभेड़ में उन्हें भावी अमंगल की सूचना दिखाई देने लगी।

राम-दल निकलने का समय हो गया था। सब्ज़ीमण्डी के आस-पास कुछ गुण्डे, बुल्ले बदले, लठ्ठ लिए, पान चबाते हुए कानाफूसी करते दिखाई देते थे। जिन सड़कों पर हो कर दल निकलने वाला था उन पर इस समय ऐसी भीड़ थी कि दुर्बल मनुष्य एक बार उस में फँस कर न हिल-डोल सकता था, न बाहर ही निकल सकता था। नगर के हिन्दुओं की सारी धार्मिकता सिमिट कर इस भीड़ में आ गई थी। जो हिन्दू मत-भेद के कारण इस में सम्मिलत न थे, वे

इन धर्मावलम्बियों की दृष्टि में, या तो पक्के नास्तिक थे या 'किरस्टान'।

जब प्रतीक्षा करते-करते दर्शकों की शान्ति का अन्त हो गया, तब दल निकला। जयकारों की गगन-भेदी ध्वनि चारों ओर गूंजने लगी। इस वर्ष कोई नई बात न थी। वही घोड़े थे, वही ऊंट थे, वही चौकियां, वही बाजे, वही हाथी। जिस हाथी पर रामचन्द्र जी सवार थे उस पर चारों ओर से निरन्तर पुष्प-वर्षा हो रही थी। फूलों की जो छड़ियां भाग्य-वश महाराज के श्री-चरणों से ढुलककर नीचे गिर पड़तीं, उन पर भक्त-वृन्द इस प्रकार गिरते थे मानों रत्नों पर टूट रहे हों।

दल निकल गया। रामप्यारी का हाथ पकड़े हुए बाबू चोखेलाल हकीम निहालचन्द की ऊँची छत से नीचे सड़क पर उतर आए। यहां अभी काफ़ी भीड़ थी। इक्का लाने की गुंजाइश न थी, न देर हो जाने पर सवारी पाने की आशा, इसलिए इसी समय अड्डे की ओर चलना तय पाया। आगे-आगे भीड़ चीरते हुए चोखेलाल चले जाते थे और पीछे-पीछे रमेश को गोद में लिए, पति का हाथ पकड़े हुए रामप्यारी। दोनों धक्के पर धक्का खा रहे थे। अभी वे सौ क़दम गए होंगे कि सहसा उन्हें सैंकड़ों आदमी गलियों से निकल-निकलकर इधर-उधर भागते हुए दिखाई देने लगे। इन्हीं भागते हुए आदमियों में वे लोग भी दिखाई देते थे, जो अभी थोड़ी देर पहले दल के साथ लट्ठ उछालते, अकड़ते चले जाते थे।

चारों ओर चिल्लाहट शुरू हो गई—

'भागो, भागो ! चल गई, चल गई ! हिन्दू-मुसलमान में चल गई !' पीछे से भीड़ का रेला आया और रामप्यारी के हाथ से पति का हाथ छूट गया। डूबते हुए तैराक का सहारा छिन गया।

रामप्यारी बेचैन हो उठी, उसके पैर लड़खड़ाने लगे, चक्कर सा आने लगा, और निकट था कि नीचे गिर जाए और सहस्रों बदहवास पैरों के नीचे पड़कर कुचल जाए कि सहसा उसे एक दीवार का सहारा मिल गया। वह दीवार से सटकर खड़ी हो गई और भयातुर नेत्रों से भागते हुए मनुष्यों में पति को खोजने लगी। उसके सूखे हुए मुख से बारबार निकल रहा था—'हाय राम ! अब क्या करूं ?' शिशु रमेश जाग पड़ा, और माता के गले से लिपट कर आश्चर्य से इधर उधर देखने लगा। इस प्रकार के धार्मिक झगड़ों में अबलाओं पर बदमाशों द्वारा किए गए अत्याचारों की भयोत्पादक कथाएं रामप्यारी सुन चुकी थी। आज ऐसी शोचनीय परिस्थिति में पड़कर उस की दुष्कल्पना जागृत हो गई और उन अतीत दुर्घटनाओं के भयावह दृश्य उसके नेत्रों के सम्मुख फिरने लगे।

चोखेलाल का कहीं पता न था। हताश होकर हृदय को मज़बूत करके, मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करती हुई, रामप्यारी बचाव का उपाय सोचने लगी। सामने सेठों की

कोठियां थीं, किन्तु वहां शरण मिलने की आशा न थी; सब के फाटक बन्द थे। सहसा उसकी बाईं ओर दृष्टि गई, एक पतली सूनी गली दिखाई दी । उसे ऐसा ज्ञात हुआ मानों ईश्वर ने उसके दुःख निवारणार्थ मार्ग निकाल दिया हो। उसके हृदय से एक बोझ सा उठ गया, पैरों में पर लग गए। भीड़ अब छंट गई थी । वह शीघ्रता से गली में घुसी। थोड़ी दूर पर उसे रोशनी दिखाई दी । वह ठिठक गई आगे बढ़ना ठीक है या नहीं ? न जाने शत्रु हों कि मित्र। किन्तु न बढ़ने में भी भलाई न थी, गली में कोई बदमाश घुस आया तब ? फिर वह जी कड़ा करके धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी।

(३)

भीड़ के रेले में पैर उखड़ जाने पर कठिनाई से जमते हैं। बाबू चोखलाल ने जब होश सम्हाला तब मण्डी के पास थे। उन्होंने देखा—सड़क के मोड़ पर कुछ मुसलमान गुण्डे खड़े हुए हैं, और जो इक्के-दुक्के आदमी घबराहट में उधर निकल पड़ते हैं उन पर लाठियों की वर्षा होने लगती है। बाबू साहब उलटे पैर भागे और बड़ी कठिनाइयों के बाद किसी तरह उस स्थान पर पहुँचे जहां रामप्यारी से साथ छूट गया था; किन्तु इस समय रामप्यारी यहां कहीं न थी । वे भय और दुविधा से काँप उठे । उनका दिल बैठने लगा, आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह वहीं ज़मीन पर बैठ गए।

सहसा एक ओर घोड़े के टापों का शब्द हुआ। चोखेलाल ने सिर उठा कर देखा, मुंशी दीनदयाल जो अभी दल के आगे-आगे थे, भागे जा रहे हैं। चोखलाल ने चिल्ला कर कहा—'महाशय! ज़रा सुनते जाइये। मैं बड़ी मुसीबत में हूं, मेरी मदद कीजिए।'

मुंशी जी ने एक बार मुड़ कर देखा, और फिर घोड़ा तेज़ कर दिया। किसी ने पीछे से कहा—यह है हमारे नेताओं का हाल! अभी ज़रा देर पहले कैसी अकड़ में थे, लेकिन झगड़ा होता देखा और दुम दबा कर भाग निकले! भइया! वह रुकने वाले नहीं हैं, अब यहां लीडरी थोड़े ही करनी है।

चोखेलाल न पीछे फिर कर देखा, एक दीर्घकाय, कसरती आदमी सिर से पैर तक खद्दर पहिने, लट्ठ लिए खड़ा हुआ है। उसके दाहिने और बाएं कई जवान बड़ी बड़ी लाठियां लिए खड़े थे। उनके चेहरों से शौर्य, आत्म-विश्वास और दृढ़ संकल्प टपक रहा था। उस टोली के सरदार ने कहा—'क्या है, महाशय! मुझ से कहिए।'

चोखेलाल एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ कर बोले—भाई! क्या पूछते हो? स्त्री की हठ का मारा हुआ हूं। घर में मेला दिखाने के लिए ज़िद कर रही थी। मैंने बहुत समझाया, मगर वह अपनी ज़िद पर अड़ी रही। लाचार और कोई उपाय न देख दल दिखाने लाया था। लौटते समय मैं भीड़ के रेले में पड़ गया और वह पीछे छूट गई। अब उसका

कहीं पता नहीं चलता। कहां ढूँढूँ, क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता।

'नारायन! नारायन! यह तो बड़ा अनर्थ हुआ। इस समय सारे शहर में आग धधक रही है। ऐसे बुरे समय एक असहाय हिन्दू अबला का यों अकेली रह जाना तो बहुत बुरा हुआ।'

'भाई! मैं तो लुट गया, कहीं का न रहा।'

सरदार ने सान्त्वना दी—'ख़ैर, आप चिन्ता न करें। इन वीरों को देखिए। यह मेरे पसीने की जगह ख़ून गिराने वालों में हैं। आप की इज़्ज़त हमारी इज़्ज़त है। अगर एक भी हिन्दू स्त्री का सतीत्व नष्ट हुआ, तो सारी हिन्दू-जाति की लाज गई। और यह धर्म पर मिटने वाले वीर जाति की लाज जाते नहीं देख सकते। बहादुरो आओ।'

होरीलाल और उसके वीर अनुयायी चोखेलाल को साथ लिए सारी रात गलियों में चक्कर काटते रहे। जहां कहीं आहट मिलती छिपकर सुनने लगते। कई स्थानों पर मुसलमानों से मुठभेड़ हुई। इन अवसरों पर वे ऐसे-ऐसे हाथ दिखाते कि विपक्षियों के छक्के छूट जाते थे। उनके द्वारा कितने ही भूले-भटके पथिकों की प्राण रक्षा हुई, कितने ही घर लुटते-लुटते बचे, किन्तु उनका कार्य सिद्ध न हुआ। इस तरह सारी रात खोजने पर भी रामप्यारी का कहीं पता न लगा।

सवेरा हुआ। पूर्वाकाश में सूर्य ने लाल आँख निकाली,

मानो कोई स्नेही पिता अपने बच्चों को व्यर्थ झगड़ते देखकर क्रोध प्रकट कर रहा हो ! हताश, मनोवेदना से आन्दोलित चोखेलाल होरीलाल के घर गए। इस समय वे अपने घर जाने का साहस न कर सके। मित्रों और पड़ौसियों से कैसे आँख मिलायेंगे, उनके प्रश्नों का क्या उत्तर देंगे, उस घर में कैसे पैर रक्खेंगे जिसका सब कुछ लुट गया ? यह बाधाएं कम न थीं। स्त्री और बच्चे की भोली सूरतें उनकी आँखों में फिर कर कलेजे पर चोटें करने लगीं।

शाम होते-होते सारे शहर में सशस्त्र सैनिकों का पहरा बैठ गया। अधिकारियों की ओर से नगर भर में मुनादी हो गई कि कहीं भीड़ जमा न हो, और सायंकाल छः बजे के बाद कोई घर से न निकले। लेकिन हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे थे, उन्हें इस मुनादी की क्या परवाह थी। यदि सड़कों पर न लड़ पाते, तो गलियों में हाथ चलाते थे। वर्षों की ज़ङ्ग खाई हुई तलवारें और छुरियां निकाली जा रही थीं। कोतवाली में शव पर शव चले आते थे, किन्तु कुछ पता न चलता था किसने मारा, कहां मारा !

तीन दिन लड़ाई का बाज़ार गर्म रहा। दोनों पक्षों ने जी खोलकर हौसला निकाला, पुराने झगड़े नये किए गए, मुद्दतों के बदले चुकाए गए। इस विकट हत्याकाण्ड में कितने मनुष्य जान से मारे गए, कितने ज़ख्मी हुए—इसका ठीक-ठीक पता लगाना कठिन था। इस बीच में चोखेलाल

बराबर होरीलाल के घर ठहरे रहे। होरीलाल रामप्यारी को ढूंढ़ निकालने में अभी तक असफल रहे, किंतु निराश नहीं हुए थे। वे चोखेलाल को नित्य आश्वासन देते-'बाबू साहब! आप निश्चिन्त रहिए। एक-एक बदमाश का घर खोदकर फेंक दूँगा, या तो उनका पता लगाऊँगा या प्राण दे दूँगा।'

चौथे दिन की बात है। दिन का तीसरा पहर था। और दिनों की तरह आज भी चोखेलाल होरीलाल को लेकर कोतवाली पहुँचे। विचार था, कदाचित् आज कुछ पता लगे कोतवाली में इस समय भी फ़रियादियों की भीड़ लगी हुई थी। चोखेलाल और होरीलाल भी एक कोने में खड़े हो गए। सब की शिकायतें रोज़नामचे में दर्ज की जाती थीं, किन्तु उन्हें यह देखकर आश्चर्य और दुःख होता था कि इन शिकायतों पर कोई विशेष कार्यवाही नहीं की जा रही थी और कर्मचारियों के पास उन अन्याय-पीड़ित फ़रियादियों के लिए व्यंग्य के अतिरिक्त और कुछ न था। इस प्रकार आधा घंटा बीत गया। चोखेलाल को नैराश्य घेरने लगा। सहसा उन्होंने देखा, एक बूढ़ा मुसलमान, सामान्य वस्त्र पहने, एक छोटे से बच्चे को कंधे पर बैठाये हुए फाटक के भीतर घुसा। उसके पीछे-पीछे एक स्त्री सिर से पैर तक सफ़ेद चादर ओढ़े हुए चली आ रही थी। चोखेलाल ने एक क्षण नवागन्तुकों को ध्यान से देखा, फिर उनकी ओर वेग से लपके।

बूढ़े मियां ने रमेश को चोखेलाल की गोद में देकर

मुस्कराते हुए कहा—'जनाब ! ये तीन रोज़ मेरे मेहमान रहे, आप को एहसास नहीं हो सकता कि अपने मेहमान को रुख़सत करने में मुझे किस क़दर रूहानी तकलीफ हो रही है लेकिन मुझे इस बात की खुशी है कि आपकी अमानत आप के सुपुर्द कर रहा हूँ।'

चोखेलाल की आँखों में आँसू छलक आए। हीरालाल झपटे और बड़े मियां के गले से लिपट गए, फिर कण्ठावरुद्ध होकर बोले—'मियां साहब ! इतने बड़े नगर में आप ही एक आदमी हैं, जिसने धर्म का असली मतलब समझा है। आप सच्चे मुसलमान हैं। आप को धन्य है।

वहां सैकड़ों आदमी खड़े थे, सभी के मुख में प्रशंसा थी, 'वाह, वाह ! शराफत इसे कहते हैं–दूसरे की बहन-बेटी को अपनी बहन-बेटी समझना।'

सब के पीछे अलग, खड़ी हुई रामप्यारी चादर के भीतर ही भीतर आंखें पोंछ रही थी। इस समय उसके हृदय में आह्लाद था, कृतज्ञता थी, पश्चात्ताप था।

बूढ़े मियां ने यह बयान दिया–मेरा नाम रमज़ान अली है। मैं क़रीब ही रहता हूँ, जिल्दबन्दी का काम करता हूँ। जिस दिन झगड़ा शुरू हुआ, उस दिन शाम को मैं अपने घर में बैठा हुआ सितार बजा रहा था। एकाएक बाहर शोर-गुल सुनाई देने लगा। मैंने सितार बन्द कर दी और लालटेन लेकर बाहर निकला। मैं बाहर चबूतरे पर आया ही था

कि एक शरीफ़ घराने की औरत बग़ल में एक बच्चा लिए हुए सहमी हुई गली में दाख़िल हुई। वह औरत थोड़ी दूर पर रुक गई। मैं चबूतरे से नीचे उतरा और करीब जाकर पूछा—'किसे ढूँढती हो?' उसने कुछ जवाब न दिया। तब मैंने कहा–'बेटी! डरो नहीं, बताओ क्या मामला है।' उसने डरी हुई आवाज़ में कहा–'मैं अपने पति के साथ मेला देखने आई थी। हम लोग घर लौटे जा रहे थे। इतने में झगड़े का शोर सुनाई दिया, फिर भीड़ में उनका साथ छूट गया।' वह नेकज़ात ख़ातून यही बाबू चोखेलाल साहब की बीबी मुसम्मात रामप्यारी देवी थीं। मैं इन्हें समझा-बुझा कर अपने घर लिवा ले गया। मेरे घर में तीन दिन रहीं। मैंने अपने एक हिन्दू दोस्त के ज़रिये इनके खाने पीने का प्रबन्ध करा दिया। वह हिन्दू साहब इन्हें अपने घर में जगह देने के लिए तैयार थे, लेकिन इन्होंने मेरे यहां ही रहना पसन्द किया। मैंने और मेरी स्त्री ने इनके मज़हबी ख़्यालात की पूरी इज़्ज़त की। झगड़े की वजह से अभी तक मैं इत्तला नहीं कर सका था।'

सन्ध्या-समय बाबू चोखेलाल की मित्र-मण्डली उनके घर पर जमा हुई। सब ने बाबू साहब के प्रति सहानुभूति प्रकट की। बड़ी रात तक रमज़ान की प्रशंसा होती रही, और राजकर्मचारियों के कुप्रबन्ध की कड़ी आलोचना। मित्रों को विदा कर के दस बजे के लगभग चोखेलाल अन्दर गए। रामप्यारी लोटे में जल लेकर समीप आई। हाथ-मुँह धोकर चोखेलाल

ने रसोई घर में प्रवेश किया। रामप्यारी खाना परोसने लगी।

चोखेलाल ने मुस्कराते हुए पूछा—फिर मेला देखने जाओगी ?

रामप्यारी ने पति के मुख की ओर घूर कर देखा, फिर दृढ़ता से बोली—हां जाऊँगी, ज़रूर जाऊँगी, अगर ऐसे देवता से फिर भेंट हो सके।

वार खाली गया ! एक क्षण चुप रह कर चोखेलाल ने एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ा, फिर सिर हिलाते हुए कहा—ऐसे साधु-चरित्र आदमी नित्य नहीं मिलते।

'तो फिर मेला भी हो चुका। इन तीन दिनों में मैंने वह देखा है, जो फिर देखने को आँखें तरस जाएँगी। मुझे तो यह आश्चर्य होता है कि कोई ग़ैर के साथ कैसे इतनी मुहब्बत दिखा सकता है। उन लोगों ने मेरी कितनी ख़ातिर की मेरे लिए घर का एक हिस्सा ख़ाली कर दिया, एक हिन्दू पड़ोसी के यहां से बर्तन ले आए, हर समय पूछते रहते थे, किसी चीज़ की जरूरत तो नहीं है बेटी, इतनी ख़ातिर कोई अपना कुटुम्बी भी न कर सकता।'

चोखेलाल सिर झुका कर भोजन करने लगे।

(४)

रमज़ान अली चोखेलाल के घर के से आदमी हो गए। वे उनके यहां सप्ताह में दो बार अवश्य जाते और जब जाते,

तो रमेश के लिए कोई न कोई खिलौना अवश्य लेते जाते। रामप्यारी बहुत मना करती, किन्तु वे न मानते। खिलौनों का एक अच्छा ढेर लग गया था।

आज चोखेलाल के घर जाते समय रमज़ान ने बाज़ार में एक नया जापानी खिलौना देखा, चट ख़रीद लिया।

दरवाज़े के बाहर से रमज़ान ने आवाज़ लगाई—रमेश! भइया रमेश!

रामप्यारी ने अन्दर से कहा—चले आइए अब्बा! दरवाज़ा खुला है।

रमज़ान ने घर में प्रवेश किया। जल्दी से सहन में पलंग बिछाकर रामप्यारी रमज़ान के पैर छूने को बढ़ी।

'यह क्या करती हो, बेटी?'

रामप्यारी ने इस आपत्ति पर कुछ ध्यान न दिया। तब आशीर्वाद देकर रमज़ान पलंग पर बैठ गए। खिलौने की ओर देखकर रामप्यारी ने कहा—अब्बा! क्यों फ़िज़ूल पैसा बर्बाद करते हो? खिलौने तो ढेरों रक्खे हैं।

रमज़ान ने कुछ उत्तर न दिया। रामप्यारी ताड़ गई कि उसका बार-बार मना करना उन्हें बुरा लगता है। वह कमरे में गई और रमेश को उठा लाई। रमज़ान को देखते ही रमेश उसकी गोद से उतर पड़ा और उनकी सफ़ेद डाढ़ी से खेलने लगा। फिर खिलौना देखते ही उनकी गोद से उतर कर उसकी ओर लपका।

रामप्यारी ने सकुचाते हुए पूछा—अच्छा एक बात पूछूं, बताओगे ?

'क्या है, बेटी ?'

रामप्यारी ने दीवार के सहारे खड़े-खड़े कहा—आपने उस दिन हमारी मदद क्यों की थी ? आप के जात वाले तो हम लोगों से कीना रखते हैं।

रमज़ान ने रमेश को अपनी गोद में ले लिया और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा–'बेटी, इसका जवाब तो रमेश ही दे सकता है। मेरे इस नन्हे बादशाह से पूछो। इसी ने उस दिन मेरे ऊपर जादू डाला था। इसी ने मुझे शराफ़त का सबक़ दिया, वर्ना मैं तो बुराइयों में फँसा हुआ आदमी हूं। बेटी ! तुम समझती हो, मैं पैसा बर्बाद करता हूं, लेकिन तुम्हारा यह ख़्याल ग़लत है। मैं तो अपने बादशाह को नज़रें देता हूं। बीस साल हुए, मेरा हामिद मुझ से छीन लिया गया था। लेकिन मैं खुशनसीब हूं कि मेरा खोया हुआ बादशाह उस दिन मुझे फिर वापस मिल गया ! मेरे जादूगर ! मेरे बादशाह !

स्नेह-विह्वल होकर रमज़ान रमेश को बार-बार चूमने लगे। अनन्त पथ पर भटकता हुआ बटोही अपने खोए हुए साथी को पाकर स्वर्गिक आह्लाद से आन्दोलित हो उठा। कल और आज का मध्यवर्ती समय आज की सत्प्रेरणा से प्रभावान्वित होकर विस्मृति के वक्ष में विलीन हो गया।

रामप्यारी का हृदय कृतज्ञता से भर गया । उस की आँखों में श्रद्धा और भक्ति के आँसू छलकने लगे। उसे ऐसा ज्ञात होने लगा मानो रमज़ान इस संसार का नहीं, किसी दूसरे दिव्य लोक का निवासी है ।

फिर रमज़ान की ओर देखते-देखते उसे ऐसा जान पड़ा, मानो वृद्धावस्था के उस विकृत रूप में सरल निर्बोध शैशव किलकारियां मार रहा है ! उस समय उसका नारी-हृदय अगाध मातृ-वात्सल्य लेकर रमज़ान और रमेश की ओर वेग से प्रवाहित हो चला ।

विनोदशंकर व्यास

व्यास जी का जन्म १९०१ में काशी के एक सम्पन्न घराने में हुआ। आपके दादा बनारस के एक बड़े रईस थे। पठन पाठन में आपको रुचि न थी, ऐंट्रेंस भी पास न किया, मां बाप समझते थे पुत्र आवारा हो गया है। पर विधाता ने व्यास जी को साहित्य-सेवा के लिए बनाया था। १९२५ में आपने लिखना आरम्भ किया और अब तक आपके पांच कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

व्यास जी छोटी छोटी, हृदयस्पर्शी कहानियां लिखने में बड़े कुशल हैं। उन्हें पढ़कर हृदय पर चोट लगती है, कहीं कहीं तो नाटक का सा आनन्द आ जाता है। आपकी कहानियां प्रायः भाव-प्रधान होती हैं। 'मधुकरी' नाम से हिन्दी के समस्त गल्प-लेखकों की कहानियों का संग्रह निकाल कर आपने हिन्दी साहित्य का बड़ा उपकार किया है।

'बदला' आपकी सर्वोत्तम रचना है। बदले का जो आदर्श आपने उपस्थित किया है, यदि संसार उस पर चले तो दुनिया सचमुच रहने की जगह बन जाए।

बदला

देश में अकाल पड़ा था। गाँव-देहात उजड़ा हुआ था। दिन अँधेरी रात की तरह भयानक मालूम पड़ता। लोग दानों के लिये तरसते, भूख से छटपटाते और पैसे के लिये रोते थे। ओह! दैव कितना भीषण परिहास था! आँखें धँस गई थीं, ठोकरें बैठ गई थीं और शरीर निर्बल हो गया था।

गाँव के लोग कहते, ईश्वर का कोप है। बरसात आकाश की ओर देखते ही कटी, जाड़ा ठिठुरते हुए कटा और गरमी अब धूप की ज्वाला से कट रही है। कैसा अद्भुत खेल है! सचमुच अकाल था। भूमि अपना सूना आँचल फैलाए हुए बैठी थी।

वह गाँव सिसक रहा था। चन्द्रमा ने झोंपड़ियों के उस टिमटिमाते हुए प्रकाश को चुरा लिया था। चाँदनी अपनी छाया में बैठाकर उन झोंपड़ियों से उसकी कहानी सुनती। सियार बोल रहे थे। कुत्ते भूँक रहे थे। सन्नाटा था। रजनी तांडव-नृत्य देख रही थी।

मोती अपनी उदास झोंपड़ी में पड़ा सोचता था। रात आँखों से खूब लड़ी थी। जागते ही कटी। ज़मींदार को मालगुज़ारी देनी है। खेत बेदखल हो जायगा, घर उजड़ जायगा, सब समाप्त हो जायगा।

मोती ग़रीब था। सबका ताबेदार नौकर था। वह अभागा अछूत था।

भैंस, बकरी और बैल तो क़र्ज़ में ही नीलाम हो गए थे। खेत भी बेदखल हो गया। झोंपड़ी जर्जर हो गई थी। मोती के पास केवल लाल और सफेद गाय बच गई थी। वह उसे बहुत प्यार करता था। खेत में काम करते हुए जब उसे मोती पुकारता—लाली! वह दौड़ती हुई पहुँचती। पालतू कुत्ते की तरह वह गाय मोती के साथ फिरती। नौ महीने की बछिया थी, तभी से उसने उसको पाला था। इससे मोती को उसका बड़ा मोह था।

सोना—अपनी पत्नी—को पीहर पहुँचाकर मोती बम्बई जायगा, नौकरी करेगा, पैसा पैदा करेगा, भूखों मरने से बचेगा।

रेल के टिकट के लिये पैसे न थे। मोती लाली को बेचेगा। सोना ने लाली को न बेचने का अनुरोध किया, किन्तु मोती विवश था। रुपये कहाँ से आते? सब कुछ चला गया था, बच गई थी लाली! बम्बई के भाड़े के लिये वह भी निकल जायगी।

अत्याचार सहन करते-करते मोती कठोर हो गया था।

वह खुद बिक जाता, मगर लाली को न बेचता, किन्तु मोती सबसे हाथ धो बैठा था। उसका दिल पत्थर हो गया था।

सोना का बाप एक दूसरे गाँव का चौकीदार था। बस पाँच बीघा भूमि थी। सोना ने वहीं चलकर रहने को कहा था। उसके पिता ने भी इस पर जोर दिया। किन्तु ससुराल की रोटी तोड़ना मोती को पसन्द न था। वह बड़ी आन का आदमी था।

सोना को पीहर पहुँचाकर मोती लौट आया। चलते समय सोना ने आँसू बहाते हुए कहा—'चिट्ठी भेजना और हो सके तो साल-छः महीने में चले आना।'

'ईश्वर की जैसी इच्छा!'—कहकर मोती चला आया।

मोती के घर में भगवान तिवारी का बड़ा मान था। गाँव में वह बड़े सीधे, सरल ब्राह्मण थे। मोती की लाली उन्हें बड़ी पसन्द थी। मार्ग में जब कभी देखते तो उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए पुचकारते। मोती जानता था, लाली उनके यहाँ सुखी रहेगी। अतएव लाली को लेकर उनके द्वार पर पहुँचा। प्रणाम किया।

उन्होंने पूछा—कहो मोती, कैसे चले?

'महाराज, सब कुछ चला गया, अब मैं भी बम्बई जा रहा हूँ।'—मोती ने उत्तर दिया।

'क्या करोगे, दिन का फेर बड़ा विचित्र होता है। ज़मींदार बड़ा दुष्ट है। अन्धेर नगरी है। कारिन्दा जो चाहता है,

करता है । ज़मींदार को अपनी मौज से ही फुर्सत नहीं मिलती ।'—कहकर तिवारी जी लाली की ओर देखने लगे।

'भाग्य में जो लिखा था, सो हुआ । अब आप लोगों का आशीर्वाद लेकर जाता हूँ टिकट के रुपये नहीं हैं । लाली को लेकर आया हूँ, २०) रुपये की ज़रूरत है । लाली आपके यहाँ रहेगी ।'—मोती ने बड़ी निराशा से कहा ।

'तुम्हारे ऊपर उसे तनिक भी दया न आई, उजाड़ कर ही छोड़ा । कब जाओगे ?'—विचार करते हुए तिवारी जी ने कहा ।

'आज ही !'

उन्होंने घर से २०) रुपये लाकर दिये । मोती रुपये लेकर लाली की तरफ़ देखने लगा । लाली भी उसकी ओर देख रही थी । बड़ा करुण दृश्य था । मोती ने लाली के गले में हाथ डालकर उसे चूम लिया और चला गया ।

कुछ दूर जाने पर बाँ·····आँ·····शब्द सुनाई पड़ा । मोती ने सोचा, लाली पुकार रही है; किन्तु हृदय पर पत्थर रखकर यह कहते हुए चला गया—'लाली, तुम्हारे भाग्य से मैं पैसे वाला हो जाता तो·····'

मोती बरबाद हो गया, उजड़ गया !

(२)

मोती बम्बई पहुँच गया था । वह भौंचक्का होकर शहर देखने लगा । जैसे, किसी भूल-भुलैयां में भटकने लगा ।

देहाती आदमी, किसी से परिचित न था। मोटर की भों-भों और घोड़ा-गाड़ी की हटो-बचो से घबड़ा उठा था। 'कहाँ जाय ? क्या करे ? नौकरी कहाँ मिलेगी ?' ये ही प्रश्न बार-बार उठते। कई दिन बीत गये। साहस नहीं होता था, बात कैसे करे ?

सन्ध्या हो चली थी। मोती भूखा था। नौकरी की खोज में वह नगर से कुछ दूर चला आया था। एक जगह खड़ा होकर देखने लगा। बड़ा भारी हाता था, उसी में गाय-भैंसें बँधी थीं। उसने अपने ही जैसे मैले वस्त्रों में कुछ काम करने वालों को देखा। सलाम-बन्दगी हुई। परिचय हुआ। मोती ने अपना अभिप्राय प्रकट किया। उसके प्रति उन लोगों की सहानुभूति हुई। उसी दिन साहब से भेंट हुई, मोती को नौकरी मिली।

साहब की 'डेरी' थी। दूध का व्यवसाय होता था। मोती को दूध दोहने का काम मिला था। वह इस काम में निपुण भी था। साहब के सामने उसकी परीक्षा हुई थी।

दिन-पर-दिन बीतने लगे। वह बड़े परिश्रम से अपना कार्य्य करता। अपने नम्र व्यवहार के कारण सबसे हिल-मिल गया था। साहब उससे बड़े प्रसन्न रहते। उसका विश्वास जमता गया।

सोना का लिखवाया हुआ पत्र मिला था। मोती का हाल पूछा था, रुपये माँगे थे, और कब आवेगा, यह भी पूछा था।

मोती ने सोना को रुपये भेजे और उत्तर में लिखवाया—'मैं अब बड़े सुख से यहां हूँ। साहब के पास रुपया जमाकर रहा हूँ। दूध के व्यवसाय में यहाँ बड़ा लाभ है, मैं अच्छी तरह उसे जान गया हूँ। कुछ दिन नौकरी करके रुपया जमा करूँगा। फिर खुद इसका कारबार करूँगा। बड़ा लाभ होगा, तब तुमको भी बुला लूँगा।'

(३)

दो वर्ष बीत गए।

दिल्ली से मोती ने गायें और भैंसें मँगवाईं। देखते-देखते उसका भाग्य चमका। सफलता से घनिष्ठता हो चली। दूध-मक्खन और घी बेचता। उसकी आँखें खुल गईं। दानों के के लिए तरसने वाला मोती अब पैसे जोड़ने लगा।

अपने एक सम्बन्धी के साथ सोना भी बम्बई चली गई। मोती को अब रोटी का कष्ट न होता। बड़े सुख से दोनों का समय बीतने लगा। मोती दिन-रात अपने काम में व्यस्त रहता, किन्तु सोना को शहर का जीवन पसन्द न आया। रुपयों के लोभ से उसे सन्तुष्ट रहना पड़ता।

दस वर्ष बीत गए।

साहब अपने देश चला गया। मोती ने उसकी डेरी ले ली थी। वह बड़ा व्यवसायी हो गया था। वह अब मोती से मोतीलाल हो गया। लेकिन, बम्बई के जलवायु से वह बराबर अस्वस्थ रहता।

सोना ने एक दिन कहा—'तुम दिन-पर-दिन दुबले होते जा रहे हो। अब यहाँ अच्छा भी नहीं लगता। ईश्वर ने बहुत धन दे दिया। चलो अब घर चलें, खेती करेंगे, यहाँ के इस जीवन में कोई सुख नहीं मालूम होता।'

सोना की इस बात पर मोती कभी-कभी विचार करता। उसके मन में भी यह बात जम गई। एक दिन उसने भी कहा—चलो, अब यहाँ नहीं रहूँगा। बहुत धन लेकर अब क्या करना है? सचमुच वे दिन कितने अच्छे थे, जब दिन भर खेत में काम करके सन्ध्या समय अपनी झोंपड़ी पर लौटते थे। वह सब कुछ तो अब सपना हो गया!

कुछ दिन के बाद मोती ने अपना कारबार बन्द कर दिया। एक सेठ के हाथ सब बेचकर रुपये एकत्र कर लिये!

सोना—कुल कितना है?

मोती ने कहा—एक लाख से कुछ अधिक!

सोना पुतली की तरह मोती की ओर देखने लगी। उसी दिन दोनों चल पड़े।

(४)

बड़ी सरस सन्ध्या थी। एक युग के बाद मोती घर लौट आया था। उसके खँडहर पर अब एक सुन्दर मकान बन रहा था। बड़ा परिवर्तन हो गया था। पैसे का प्रभाव था, गाँव के लोग मोती को घेरे बैठे थे। वह अपना वृत्तान्त सुना रहा था। उन्हीं लोगों की बात चीत से मोती को मालूम

हुआ कि ज़मींदार पतन के मार्ग की सीमा पर पहुँच गया है।

लाली को देखकर मोती दुखी हुआ। वह बूढ़ी हो गई थी। अब दूध नहीं देती थी। उसकी ठठरियाँ निकल आई थीं। मोती उस दिन बूढ़े ब्राह्मण को रुपयों से प्रसन्न कर लाली को अपने यहाँ ले आया।

आज गाँव की नीलामी थी। ज़मींदार की छावनी पर डुग्गी बज रही थी। बड़े-बड़े महाजन एकत्र हुए थे। विलासिता के पर्दे में छिपा हुआ ज़मींदार अपना नग्न दृश्य देख रहा था।

मोती को भी समाचार मिला। वह बड़ा उदास था। नोटों का बंडल बाँधकर वह निकला। सोना ने समझा, मोती नीलाम में गाँव ख़रीदेगा। गाँव के लोग भी इसका पहले से अनुमान कर रहे थे।

मोती नीलाम की बोली सुन रहा था। पूर्वकाल के भयानक दिन उसकी आँखों के सामने फिर गये। उसका हृदय काँपने लगा। सामने ही ज़मींदार आँखें नीची किये बैठा था। मोती अपने को सँभाल न सका, उसने तत्काल ज़मींदार के चरणों पर नोटों का बंडल रखते हुए कहा—मैं यह दुःख भोग चुका हूँ। भगवान न करे, किसी को यह दिन देखना पड़े, लीजिये, इनसे अपना गाँव बचा लीजिये। आप न होते तो मेरे दिन भी न बदलते। आप के कारण ही आज मैं रुपया जोड़ सका हूँ। अतएव यह सब आपका ही है।

ज़मींदार आश्चर्य से उसे देखने लगा।

श्री वाचस्पति पाठक

पाठक जी जीवन की नन्ही बातों के चित्र खींचने में सिद्धहस्त हैं। उनकी कहानियों में प्लाट की प्रधानता चाहे न हो पर विचारों की कमी उनमें नहीं। जीवन से छोटी-छोटी घटनाएं लेकर मनोवैज्ञानिक ढंग से उनका विश्लेषण करके सामने रख देते हैं। भाषा उनकी सरल और बोध-गम्य होती है, शैली आकर्षक और मार्मिक। 'द्वादशी' और 'प्रदीप' नाम से आपके दो संग्रह 'भारती भंडार' से निकल चुके हैं।

'मन्नू' आप की शैली का एक उत्तम नमूना है। बच्चों के मनोविज्ञान, उनकी सरलता और भोलेपन का कितना सुन्दर चित्र!

{not interes
Slang:-

मुन्नू

~~[illegible]~~

कल ही की बात है। गर्मी से व्याकुल होकर मैं अपने कमरे में लेटा था। मुन्नू ने मेरा पता पा लिया। वह ठीक ही समझता था कि मैं जाग रहा हूँगा। उसने दरवाजे के पास आकर ज़रा सा अपना मुँह निकाला और कहा—झां...ं।

मैं अब उसकी उपेक्षा न कर सकता था। उसके विश्वास के अनुसार ही मैंने धीरे से कहा—झां...ं।

वह अभी छिप गया था। अभी दो एक बार वह ऐसा ही करना चाहता था, पर मैंने पुकारा—मुन्नू ! मेरा राजा ! आ बेटा ! तुझे अच्छी सी तस्वीर तो दिखाऊं !

वह दौड़ आया। एकदम आकर मेरे ऊपर झूल पड़ा। पास पड़ी पत्रिका के पन्ने उलट कर मैंने कहा—देख ! देख !!

वह खूब हँसने लगा—हाः-हाः-हाः । उसके छोटे-छोटे चमकीले दांत उसकी हँसी को चमाचम कर रहे थे।

मैंने पूछा—है न अच्छी।

वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। उस रंगीन चित्र की मोह-

कता का उस पर असीम अधिकार था। वह अभी उसे खूब देखना चाहता था पर, मैंने पत्रिका के पन्ने उलटते हुए कहा—और देखो, ये।

उसकी वह हँसी बढ़ती ही गयी। रंगीन चित्रों पर वह खूब ठहाके लगाता। मैं उनके लिए रुकता भी अधिक था। हँसी के साथ ही साथ वह अपनी तोतली वाणी में पूछता भी जाता था—कौन है? क्या है?—मेरे बतलाने को वह कुछ समझता तो था नहीं। उसको आती थी अपनी हँसी।

मेरे लिये अब इस प्रसंग में आकर्षण न रह गया था। इसी लिये उससे बातें भी न हो पाती थीं। हां-हां, एक बात और भी मैंने सोची। दूसरों ने उसकी नासमझी का एक और फायदा उठाया है। उसे महिलाओं के चित्रों को दिखलाकर खूब झुठलाया होगा। यह तो तेरी माँ है मुन्नू! यह नानी...! चाची... ! भाभी...! आदि कहा होगा। मैंने ऐसा कई बार देखा है। इसी लिये उसके केवल हँसने के कारण मैंने ऐसा अनुमान लगाया। ख़ैर!

मैं उसे लिये ही आराम कुर्सी पर आ गया। मुझे बातें करके अपने सोने के लिये उसे खुशकर जल्द भेजना भी था। बच्चों को तो प्यार से ही सन्तोष मिलता है। वे इसी की क़ीमत समझते हैं। मैं यद्यपि इसको उन्हें गुदगुदा ही कर जना पाता हूँ फिर भी उनकी प्रसन्नता उन्हें मिल जाती है। मैंने गुदगुदाना और उससे बातें करना शुरू कर दिया। तुम

ने खाना खा लिया ? क्या खाया ? इसके चारों ओर उसकी हँसी गरज की तरह गुँथती चली जा रही थी।

इतने में वह काली सी बिल्ली दौड़ गई। बस, फिर क्या था, उसे भी एक बात मिल गई। उसने अपना भला सा मुँह बनाया और कहा—म्याऊँ। और शायद किसी से सुनी हुई बात लेकर कहा—यह शेर की मौसी है! है न ?

यह···यह मुन्नू! मैंने जैसे डरकर पूछा तब तो यह बड़ी बुरी बात है।

मेरी डर से चढ़ी हुई आँखें देखकर आश्चर्य से उसने कहा—अरे! यह बुरी बात है ? वह फिर हँस पड़ा।

और क्या--मैंने बतलाया--तुम नहीं जानते ? शेर हाथियों को चपतें मारकर गिरा देता है, उन्हें फाड़ डालता है, खा जाता है। हम सब उससे बचते हैं। फिर यह उसकी मौसी कितनी कातिल होगी ? पूरा डरा हुआ बनकर मैंने कहा—मुझे बड़ा डर लगता है मुन्नू।

हा···हा···हा···और मुझे ?—उसने पूछा।

तुम तो राजा की तरह सचमुच नहीं डरते मुन्नू!—मैंने कहा।

मेरी यह बात सुनकर वह प्रसन्न हो गया। उसकी वीरता की जो उपमा मैंने दी थी उससे भी वह प्रभावित जान पड़ा। उसने इठला कर बड़े चाव से कहा—मैं, अच्छा···अच्छा राजा हूँ न ?

हूँ !—कहकर मैं हँस दिया था । पर उसी समय मैंने उसे समझाया ।—तुम तो राजा हो ! फिर ? अभी दोपहर में जाकर सो रहो । अब शाम को हम तुम दोनों मिलकर बढ़िया कपड़े पहन कर टहलने चलेंगे । यह है न अच्छी सी बात ? और वहां से खिलौने भी लायेंगे ।

अब की मुन्नू सब बातें चुपचाप सुनता रहा । राजा ही की तरह सब समझना भी चाहता था । पर, अभी उसके दिल में इसकी सार्थकता न रही होगी ! और फिर इस प्यार के बीच मेरे हृदय की असुविधा का छल वह छोटा सा बच्चा कहां समझता ? उसने मेरे सम्पूर्ण कथन को जैसे सुना ही नहीं । झट बोल उठा—और बच्चा ?

मुझे हँसी आ गई । इस नन्हे से बच्चे के मन में कैसा छोटा सा एक सात्विक गर्व है ! फिर भी गर्व की इयत्ता ही कितनी ? वह अपने छोटे कीड़े से भाई को एकदम अपदार्थ गुन रहा है । उस हँसी को तो मैं पी गया । ठीक समझदार आदमी की तरह गम्भीरता से मैंने उसका समर्थन किया ।—वह तो रोता है । तुम सा राजा तो है नहीं ! वह भला हम सब के साथ चलने लायक है ?

मुन्नू का हृदय हर्षातिरेक से भर गया । यद्यपि उसे अपने बड़प्पन की गरिमा का यथार्थ बोध आश्चर्यान्वित भी किये था । उसका मुँह खुल पड़ा था । वे छोटे-छोटे दांत अपनी कतारों में हँसी छिपाये चमक रहे थे । मैंने फिर मौका पाकर

कहा—तो जाओ मुन्नू अब सो रहो।

अब की वह सकपकाया। कुछ उठने की भी चेष्टा की। तब तक उसकी दृष्टि पड़ गई मेरे कैलेण्डर पर। वह खूब ठहाका मार कर एक बार फिर हँसा।…अरे यह क्या……? प्रश्न के साथ ही अपने आश्चर्यान्वित मुँह की उसने रेखाएं बिगाड़ कर उसे बुढ़िया के भाव प्रदर्शित करने के उपयुक्त कर लिया। उसने उस व्यंग ही में मेरी ओर देखकर उत्तर मांगा।

उसके देखने के साथ ही मेरी दृष्टि उस कैलेण्डर पर पड़ गई। मेरी कुर्सी की बग़ल में टेबिल के सामने वाली दीवार पर एक लाइफ इन्श्योरेन्स सोसायटी का कैलेण्डर टँगा रहता था। चित्रकार ने उसमें किसी महाराष्ट्र के कमरे का चित्र अंकित किया है। उस ग़रीब के घर में सिवा एक गान्धी जी के चित्र और कुर्सी-टेबिल के कुछ भी नहीं। वह एक कुर्सी पर बैठकर अपने बीमे का सार्टिफिकेट देख रहा है। प्राप्य धन की प्रसन्नता में अपने आजन्म की भ्रान्ति को खोकर वह गलित पलित दन्तहीन बुड्ढा जैसे पहले पहल हँसा है। वह जैसे अँधेरी रात्रि के बीच चन्द्रमा के प्रकाश में आ गया है। उसकी बुढ़िया भी उसके कन्धों पर हाथ रख कर उस सार्टिफिकेट को—सतृष्ण नयनों से देख रही है। दोनों के मुख की स्निग्ध, प्रसन्न और सात्विक हँसी उस चित्र की जान है। पर, मुन्नू ने तो केवल उसके वृद्धत्व का रस लिया। उसने व्यंग किया। अपनी विजय की

किलकारी से सब कुछ गुँजा दिया। उसने पूछा--अरे, यह क्या?

मैंने मुस्करा कर कहा—अरे, हां मुन्नू! यह तो बुढ़िया है।--मैं जानता था कि उसके कोष में इस शब्द का विशेष अर्थ है।

यह क्या करती है?--उसने पूछा।

शायद वह कुछ वैसी ही बात सुनना चाहता होगा। मुझे एक चाल सूझ गयी। विनोद के लिये तो अच्छी ही थी। किन्तु उससे तो मुन्नू का यह मिलना ही मेरे मन में अन्त तक के लिये एक सुखद-स्मृति बन गया है।

--कान्त! मैंने गम्भीर बन कर कहा--मेरी रखवाली करती है।

उसने समझा नहीं। इस लिये फिर हँसकर पूछा--क्या?

तुम नहीं समझे? अबकी मैंने उसे समझाया। जब मैं नहीं रहता या मैं सोता रहता हूँ, उस समय यदि कोई यहां आकर शरारत करे, शोर करे तो तुम जानते हो यह क्या करेगी? मैंने ज़रा रुककर उसकी ओर देखकर कहा--यह उसे पकड़ रखेगी।

मुन्नू कुछ सोच में तो ज़रूर पड़ गया। पर हँसा। जैसे वह इस तथ्य को समझता है। पर, यह बात उसे बुरी मालूम हुई। और फिर मुझे मुन्नू के अधिकार की रक्षा करके ही जैसे

यह बात कहनी चाहिये थी। इसी लिये उसने पूछा--सबको?

और क्या?-मैंने कहा—यह क्या किसी से डरती है?

हम को भी पकड़ेगी। अब की उसने उसे स्पष्ट करना चाहा। उसके मुख पर इसकी समीक्षा थी।

तुम तो शरारत करते नहीं मुन्नू! मैंने उसे याद दिलाया--तुम तो राजा हो!

मुन्नू को धैर्य मिल गया। और उसका अधिकार भी स्पष्ट। उसने एक सन्तोष की सांस ली और जैसे पूरा प्रसन्न होकर बैठ गया।

अब मैं उठा। उससे मैंने कहा--अच्छा अब जाओ सो रहो। तब न चलेंगे शाम को टहलने।

वह सीधे मेरे आंगन की ओर निकल भागा। मैं भी बिस्तरे पर आकर नींद बुलाने के लिये पत्रिका के पन्ने उलटने लगा। उस बन्द कमरे में दिन का धूमिल प्रकाश मेरे सोने और पढ़ने दोनों के लिये अनुकूल था।

चार छ दस मिनट और बस। उसका कहीं मन न लगा। वह जिस सम्मान, मित्रता-पूर्ण प्रेम और अधिकार का उपभोग कर गया था उससे चोखा रंग तत्काल कोई चढ़ा कैसे पाता? वह स्वतन्त्र वायु की लहरों की भाँति घूम पड़ा। वह मेरे कमरे के भीतरी दरवाज़े के पास आ गया। कुछ

बोला नहीं, पर किवाड़ ज़रा सा ज़रूर हटाया। उसकी चीं...ई की आवाज और बस, वह हट गया। अपने सोने में बाधा पड़ने से मैं शायद बिगड़ूँ, सोचा होगा। चुप रह गया।

मुझे ऐसे नींद तो आती ही नहीं। उसे बुलाना ही पड़ता है। अपने उड़ने वाले मस्तिष्क को थका देने के लिये पढ़ने की कवायद करनी पड़ती है। सो तो अभी पूरी नहीं हुई थी। मेरे मन में उसकी हरएक हरकत जागृत होने लगी। वह अभी वहीं खड़ा है। ठीक दरवाजे के पास। वह जैसे मेरी आहट ले रहा है। मुन्नू......मुन्नू...... ! लो शशी भी आ गई। धम......धम......अब दोनों—मुन्नू और शशी—पास पास खड़े थे।

शशी फिर कुछ बोलना चाहती रही होगी। वह सन्देह में कैसे रहती। पर उसे मुन्नू ने रोका। चुप रह रे शशी। उसने गला दबाकर, जैसे और कोई न सुने और धीरे से कहा। क्योंकि वह तो उस समय जैसे किसी गूढ़ व्यापार में लगा था।

शशी तो अद्भुत चंचल लड़की है। उससे कैसे रहा जाता फिर उसने पूछा ही--क्या है मुन्नू ?

इसमें बुढ़िया है। मुन्नू ने फुसफुसाकर, पर उत्तेजित स्वर में कहा—तू मानेगी नहीं ? उसने बड़े ही तरह डाँटा। उस का उसके मन में जैसे कोई भय ही नहीं।

पर, शशी ने माना नहीं। उसकी बात खतम होते न होते

वह उसमें झांकने के लिये दरवाजा खोलकर बढ़ी। पर मुन्नू ने खींचकर कहा—अरे, दादा सोते हैं ? मार खायगी ? उसने एक और भय बतलाया। तब तक उसने झांक ही लिया। कहा—बुढ़िया कहाँ है ?

मैं चुपचाप इसी फुसफुस को सुन रहा था। मुझे बड़ी हँसी आई। पर, मैं बोला नहीं। मुन्नू अपनी निर्भयता दिखला कर पूछ रहा था—तू देखेगी बुढ़िया ?...अच्छा।

वह बहुत सजग होकर भीतर घुसा। शायद उसे मेरा भी ख्याल रहा हो। पर मैं तो ईज़ीचियर की आड़ में था। शशी को मेरी बात याद ही नहीं रही। वह मुन्नू से पहिले ही जानती थी कि यहां कुछ नहीं है।

क्षण भर के लिये मुन्नू रुका। इधर उधर देखकर उसने उसे जैसे बेवकूफ बनाकर कहा—देखेगी ? देख ! उसने मेरी वहां पड़ी हुई छुड़ी कैलेण्डर की तरफ बढ़ा दी।

अब शशी के लिये असह्य हो गया। उसने कहा-यह तो तस्वीर है। तुम इसी से डरते रहे मुन्नू ! वह उसे उतारने के लिये बढ़ी। खींच भी लिया।

शशी ! मुन्नू धीरे से चिल्लाया। जैसे वह कहना चाहता था कि तू तो है बेवकूफ़ ! पर उत्तेजना में उससे तर्क न किया गया। उसने झटके से उसे छीन लिया। और समझे ? उसने उस कैलेण्डर को फाड़कर क्रोध से शशी के ऊपर फेंक दिया वह जैसे सचमुच उसे झुठला रहा था।

शशी डरी नहीं। वह हँसी। मुन्नू भी अपने को रोक न सका। एक साथ दोनों हँस पड़े।

अपनी ही हँसी से दोनों जैसे जाग गये। मेरी सुधि आ गई होगी। बिना रुके, वे भाग गये। तब से शशी तो एकाध बार दिखलाई भी पड़ गई है पर मुन्नू तो जैसे मेरी दृष्टि से बचता रहता है।

पं० मखनलाल महादा

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

आधुनिक कथा-साहित्य में श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने अपनी सरस, मनोरंजक तथा कला-पूर्ण कहानियों के कारण एक गौरव-पूर्ण स्थान बना लिया है। एक लेखक ने हाल ही में लिखा कि कहानीकार की अपेक्षा चन्द्रगुप्त कहानी के समालोचक ज्यादा हैं। पर यदि आपकी कहानियों का बारीकी से अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि कहानी का समालोचक होना ही आपकी कहानियों को कला की दृष्टि से पूर्ण बनाता है। भाषा आपकी सरल, हृदयग्राही और बोध-गम्य होती है और वर्णन शैली आकर्षक।

चन्द्रगुप्त जी का जन्म १९०६ में पश्चिमोत्तर पंजाब के एक गाँव कोट-अदू में हुआ। शिक्षा आपने गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में प्राप्त की और वहां से विद्यालंकार की उपाधि लेकर आप वहीं रिसर्च स्कालर नियुक्त कर दिए गए। १९३२ में आपने लाहौर में 'विश्व साहित्य ग्रन्थमाला' का प्रकाशन आरम्भ किया। चन्द्रकला, भय का राज्य और अमावस नाम से आप के तीन कहानी संग्रह निकल चुके हैं। अशोक नाम से, आप का एक नाटक

भी निकला है। आप ने पहले-पहल १६२८ में हिन्दी में कहानी लिखनी आरम्भ की।

'काम-काज' आधुनिक ढंग की एक बहुत ही सुन्दर तथा कला-पूर्ण रचना है।

कामकाज

(१)

बाजार-भर में तहलका-सा मच गया। अधेड़ उम्र के एक सज्जन अपने एक नौजवान रिश्तेदार के सहारे अनारकली बाजार के बीचोंबीच चले जा रहे थे। उनकी एक बाँह बँधी हुई थी, कपड़े मैले हो गये थे और मालूम होता था कि बहुत दिनों से वे हजामत नहीं बना पाये। इन सज्जन की आँखों में इतनी गहरी निराशा और असीम व्यथा का भाव स्पष्ट अंकित था कि देखने वाले सहम कर रह जाते थे। उनके पीछे-पीछे चालीस-पचास व्यक्ति चुपचाप चले जा रहे थे। क्वेटा के भूकम्प से बचे हुए या आहत व्यक्तियों का पहला बैच आज लाहौर पहुँचा था, और उन सब में सम्भवतः यही एक ऐसे सज्जन थे, जो पैदल चलने लायक बच रहे थे।

लाला कस्तूरीमल अपनी दूकान में खड़े होकर नये आने वाले कपड़ों के नमूनों की जाँच-पड़ताल कर रहे थे। उनकी निगाह दूर से आते हुए उस मातमी से मजमे पर पड़ी, मगर

उन्होंने उस ओर ध्यान नहीं दिया। दो-एक मिनट में वह सज्जन लाला कस्तूरीमल की दूकान के सामने आ पहुँचे और उन्होंने अपने साथ के नौजवान से कहा—'बेटा, मुझे दो-एक कपड़े न ख़रीद दोगे ?'

'मैं भी आप से यही प्रार्थना करने वाला था।'—कहकर वह नवयुवक उन्हें लाला कस्तूरीमल की दूकान के भीतर ले गया। साथ का सारा मजमा दूकान के बाहर रुक गया।

लाला कस्तूरीमल की दूकान पर सेल्समॅन की कमी नहीं है, मगर इन सज्जन की मैली-कुचैली हो रही आकृति में भी कुछ ऐसा आकर्षण था कि लाला साहब ने आगे बढ़कर उन का स्वागत करते हुए पूछा—'कहिये, क्या हुक्म है ?'

उन सज्जन ने धीरे से कहा—'कुछ धोतियाँ दिखाइयेगा ?'

उसी वक्त एक आदमी को धोतियाँ लाने का हुक्म हो गया। सहसा लाला कस्तूरीमल को भी जैसे इलहाम सा हो गया कि यह सज्जन कहाँ से आ रहे हैं। उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ पूछा—'आप क्वेटा से आ रहे हैं ?'

'जी हाँ।'

लाला कस्तूरीमल की उत्सुकता अपनी चरम सीमा तक जा पहुँची। वे पिछले तीन दिनों में कम-से-कम बारह तार क्वेटा को दे चुके थे, और उनमें से एक का भी जवाब उन्हें नहीं मिला था। उनके बहनोई अपने सम्पूर्ण परिवार-सहित क्वेटा में ही रहते थे और उनके सम्बन्ध में उन्हें अब तक कोई

खबर नहीं मिली थी। धोतियों के एक नये आये हुए बण्डल का तागा कैंची से काटते हुए उन्होंने ज़रा व्यग्र भाव से पूछा—'पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट के मि० मधुसूदन को आप जानते हैं?'

उन वृद्ध सज्जन ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा--'जी हाँ।'

'उनके घर वालों को भी।'

'जी हाँ। खूब अच्छी तरह।'

लाला कस्तूरीमल ने नीली किनारी की एक धोती उन सज्जन के सामने खोलकर दिखाते हुए कहा--'यह नागपुर की धोती है......मि० मधुसूदन तो शायद उन दिनों दौरे पर थे?'

'जी नहीं। २६ मई की रात को उन्हें दौरे के लिये रवाना होना था, मगर वे गये नहीं। दौरा उन्होंने अगले दिन के लिये मुल्तवी कर दिया था।'

एक और जोड़ा उन सज्जन के सामने फैलाते हुए लाला कस्तूरीमल ने कहा—यह धोती धुलने के बाद बहुत हलकी हो जाती है—ठीक गरमियों के लायक। यह भी नागपुर की है। अच्छा, तो वे दौरे पर नहीं गये?'

'जी, नहीं जा सके।'

'मेरा कोई तार उन्हें मिला था?'

'मुझे आपके साथ हार्दिक सहानुभूति है। मि० मधुसूदन

अब इस दुनिया में नहीं रहे।'

लाला कस्तूरीमल को उन वृद्ध सज्जन की बात पर जैसे रत्ती-भर भी विश्वास नहीं आया। धोतियों के ढेर में से एक और जोड़ा निकालते हुए उन्होंने कहा—'आप किन मधुसूदन की बात कर रहे हैं?'

'उन्हीं मधुसूदन की, जिनकी पत्नी का नाम ऊर्मिला है, जो पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट में इंजीनियर थे और जिनकी कोठी बाबू मोहल्ले के दक्षिणी किनारे पर सरकारी हाई स्कूल के खेलने के मैदान के नज़दीक थी।'

लाला कस्तूरीमल के चेहरे पर गहरे विषाद की रेखा साफ़-साफ़ दीख पड़ी। डूबता हुआ व्यक्ति जिस तरह तिनके के आसरे को भी नहीं छोड़ना चाहता, उसी तरह लाला कस्तूरी मल ने अपने आविश्वास को ज़बरदस्ती जमाये रखने की चेष्टा करते हुए कहा—'भूकम्प के बाद आप उनके यहां गये थे?'

'नहीं जी।'

'फिर आपको कैसे मालूम हुआ कि वे नहीं बच पाये?'

'उनके छोटे भाई साहब की ज़बानी मालूम हुआ! आप बिना किनारे की भी कुछ धोतियाँ दिखाइयेगा?'

'मदरासी धोतियाँ। कर्नाटक मिल। पाँच सात प्लेन डिज़ाइन फेंको!' लालाजी ने अपने आदमी को आवाज़ दी और उसके बाद कहा—'उनके भाई साहब से? क्या उन्होंने मि० मधुसूदन का अन्तिम संस्कार किया था?'

'जी नहीं। उनकी देह मिली ही नहीं। शायद कोठी की खुदाई करने पर कहीं कुछ पता चले।'

दक्षिण के छज्जे पर से पाँच-सात धोतियों का एक ढेर इसी समय लाला कस्तूरीमल के ठीक सामने आकर गिरा। इस उद्विग्नता में भी लाला साहब के हाथ अपनी सहज आदत से गाहक के सामने जोड़ा खोलकर दिखाने लगे—'यह कर्नाटक का माल है। कर्नाटक ने नागपुर को बड़ा धक्का पहुँचाया है।' लाला साहब ने उन वृद्ध सज्जन के अत्यन्त गम्भीर बने हुए चेहरे की ओर देखते हुए कहा—'तो फिर क्या यह मुमकिन नहीं कि घर में किसी को इत्तला दिये बिना ही वे दौरे पर चले गये हों ?'

'नहीं जी। ऐसा नहीं हुआ। वे लोग रात को बहुत देर तक एक साथ ताश खेलते रहे थे।'

'ये धोतियाँ आप अवश्य पसन्द करेंगे। हाँ, ऊर्मिला का क्या हाल है ?'

'वे अस्पताल में हैं।'

'अस्पताल में !' लाला कस्तूरीमल की सम्पूर्ण देह एक बारगी काँप उठी और क्षण-भर के लिए उनके दोनों हाथ धोतियों के ढेर पर से उठ गये—'उसकी हालत कैसी है ?'

'चोट तो उन्हें उतनी अधिक नहीं लगी, जितना पति और बच्चे के देहान्त का सदमा पहुँचा है। आपको अवश्य ही

स्वयं केटा जाकर उन्हें लाने का प्रवन्ध करना चाहिए । इस जोड़े की कीमत क्या है ?'

'चार रुपया छः आना इसकी खरीद है । मैं आप से ज्यादा चार्ज नहीं करूँगा । कुछ और भी नमूने दिखाऊँ क्या ?'

'आपकी मेहरवानी । वनी-वनाई कमीज़ें भी तो आपके यहाँ होंगी ?'

'आप विदेशी कपड़ा तो नहीं पहनते न ?'

'जी नहीं ? मुझे स्वदेशी कपड़ा ही चाहिए ।'

'हम खुद जहाँ तक वन पड़ता है, स्वदेशी माल ही वेचते हैं । आपने खुद ऊर्मिला को अस्पताल में देखा था ?'

'जी नहीं । यह भी मि० मधुसूदन के भाई साहव ने ही वताया था । मैं खुद चोट खा गया था, कहीं आ-जा नहीं सका ।'

'आप रेशमी कमीज़ें चाहते हैं या सूती ? दोनों ही देख लीजिए । रामलाल, ३८ नम्बर की कमीज़ें लाना !' और उस एक ही साँस के उत्तर-भाग को अत्यधिक करुण और एकदम ठण्डा वनाते हुए लाला कस्तूरीमल ने कहा—'तो क्या काशो भी इस दुनिया में नहीं रहा ?'

'मुझे इस वात का हार्दिक दुख है कि यह दारुण समाचार मैं आपको दे रहा हूँ ।

इस समय तक काउण्टर पर कमीजों का ढेर लग गया था । लाला कस्तूरीमल उस ढेर की कमीज़ें दिखाते हुए वोले-

'यह मुर्शिदाबादी रेशम की कमीज है, यह ढाके के रेशम की और यह काशी के रेशम की। मज़बूती के लिहाज से यह काश्मीरी रेशम सबसे बढ़िया है। मगर यह इत्सूका सूती कपड़ा सब को मात कर गया है। मिल ने हाल ही में कीमतें भी बहुत गिरा दी हैं ?' और तब अपने हृदय के कुचले हुए अविश्वास को ज़बरदस्ती जगाकर लाला कस्तूरीमल ने कहा– 'मि० मधुसूदन के भाई साहब तो चमन गये हुए थे।'

'दो-एक दिन पहले ही वे क्वेटा पहुँचे थे। उस रात वे बरामदे में सोये थे, इसी से बच गये। इस कमीज़ की कीमत क्या है ?'

'तीन रुपया छः आना। आप से मैं तीन ही लूँगा।'

'धन्यवाद ! इस वक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिये।'

इसी समय एक सम्भ्रान्त महिला उस दुकान में आई। लाला कस्तूरीमल अपने एक सहकारी को उन सज्जन के पास छोड़कर स्वयं उस महिला की ओर बढ़ गये। उनके चेहरे पर इस समय हद दर्जे की उदासी छाई हुई थी, परन्तु उनकी तत्परता पर इस उदासी का कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाया था !

(२)

रावलपिंडी जेल का सबसे अधिक ताकतवर और कठोर चौकीदार यूसुफ़ मज़े-मज़े में ग्यारह का घंटा बजा रहा था। सरदियों का मौसम था और मध्याह्न सूर्य की हल्की-हल्की

धूप बहुत भली प्रतीत हो रही थी। इसी समय जेल के बड़े फाटक के बाहर से आवाज़ आई–'तार ले लो।'

ड्योढ़ी में कोई चौकीदार नहीं था। भीतर के सहन से यूसुफ़ ने तारवाले की आवाज़ सुनी, मगर उसने कोई परवाह नहीं की। मज़े-मज़े में उसने मुगरी अपनी जगह रखी और धीरे-धीरे वह फाटक की ओर बढ़ा। तारवाला बहुत अधीर हो रहा था, परन्तु यूसुफ़ का डील-डौल देखकर उसे हिम्मत न हुई कि वह उस पर अपना रोब डालने का प्रयत्न करे।

नज़दीक आकर यूसुफ़ ने पूछा—'किसका तार है?'

'यूसुफ़ जमादार का।'

अट्टहास करके यूसुफ़ हँस पड़ा। जेल भर में और तो कोई यूसुफ़ है नहीं। बाकी रहा वह, सो उसका तार आ ही नहीं सकता। पिछले कई बरसों से जिस आदमी के पास एक चिट्ठी तक नहीं आई, उसका तार कहाँ से आ सकता है? फिर उसे देगा ही कौन? सरहद के जिस अफरीदी प्रान्त में उसका मकान है, उसके पचास मील की परिधि में एक भी डाकखाना या तारघर नहीं। जी-भरकर हँस लेने के बाद यूसुफ़ ने कहा—'कहीं ग़लती से कचहरी के यूसुफ़ का तार जेल के यूसुफ़ के पास तो नहीं ले आये?'

मगर तार सचमुच उसी का था और बहुत शीघ्र उसे मालूम हो गया कि उसके ससुर साहब मरणासन्न हैं। मौत के बाद

कोई और व्यक्ति ठीक तौर से उन्हें दफ़ना सकेगा, इस बारे में उन्हें शक था, इसीसे उन्होंने यूसुफ़ को बुलाने के लिये तार भिजवाया है।

इस जेल में चौकीदार नियुक्त हुए यूसुफ़ को पन्द्रह बरस बीत चुके हैं। इन पन्द्रह बरसों में वह एक बार भी अपने देश को नहीं गया। कभी किसी बात के लिये एक दिन की भी छुट्टी उसने नहीं ली। युवावस्था के प्रारम्भिक दिनों में उस अशासित प्रान्त में अपने अनेक साथियों के साथ यूसुफ़ ने बीसों साहसिक काम किये हैं—डाके डाले हैं, चोरियाँ की हैं और छोटी-मोटी लड़ाइयाँ भी लड़ी हैं। मगर उसके बाद जब यूसुफ़ का विवाह हो गया, तो उसके श्वसुर-पक्ष का यह सब से बड़ा उलाहना बन गया कि यूसुफ़ निठल्ला है—न वह खेती बाड़ी करता है, न किसी गिरोह का सरदार है और न सरकार ही से वह कुछ पाता है। उन उलाहनों से तंग आकर वह अपने देश से भाग खड़ा हुआ था और रावलपिण्डी पहुँचकर जेल में पहरेदार के पदपर नियुक्त हो गया था। पिछले पन्द्रह बरसों में प्रतिमास वह कम-से-कम दस रुपये अपने श्वसुर साहब के पास भेजता रहा है, मगर न तो वह खुद कभी उन से मिलने के लिए गया और न उसने अपनी पत्नी को ही अपने पास बुलवाया।

अपने श्वसुर का तार पाकर सहसा यूसुफ़ को अपनी मातृ-भूमि की स्मृति हो आई। वज़ीरिस्तान के वे नंगे पहाड़,

उन पहाड़ों पर चरती हुई भेड़ें और उन भेड़ों के साथ-साथ स्वस्थ, हृष्टपुष्ट और सुन्दर पठान युवतियाँ। उन्हीं सूखी-सी पहाड़ियों पर अंगूर पैदा होते हैं। उसी भूमि की मटियाली सी सतह पर सरदे बिछे रहते हैं और वहीं किशमिश, न्योज़े और बादाम की बहार आती है। वहाँ आज़ादी है, वहाँ वीरता है और सबसे बढ़कर वहाँ पुरुषत्व है। हाँ, यूसुफ़ का बहिश्त वहीं तो है।

और इसके साथ-ही साथ उसे अपने श्वसुर की बीमारी का स्मरण हो आया। वह बीमार हो गया है। बुड्ढा है, चल बसेगा। एक दिन जाना ही तो था। इसमें न कोई अचम्भे की बात है, न चिन्ता की और न शोक की। मगर फिर भी उसने बुलाया है। और कौन उसे ठीक तौर से दफ़ना सकेगा! यूसुफ़ को जाना ही चाहिए। वह जायेगा ही।

मातृभूमि की याद से एक विशेष तरह की स्निग्धता का भाव यूसुफ़ के चेहरे पर झलक उठा और पश्तो का एक गीत गुनगुनाता हुआ वह जेलर साहब के दफ़्तर की ओर बढ़ गया। यूसुफ़ के आने से पहले ही उसके तार की बात जेलर साहब को मालूम हो चुकी थी। एक मुसकराहट के साथ उसकी ओर देखकर उन्होंने कहा—'क्यों यूसुफ़, पन्द्रह साल का रिकार्ड तोड़कर छुट्टी लेना चाहते हो?'

यूसुफ़ ने कोई जवाब न दिया।

जेलर साहब ने पूछा—'तुम्हारे ससुर की उम्र कितनी है?'

'छियत्तर साल।'

'अब भी तुम चाहते हो कि वहाँ पहुँचकर उसे बचाने की कोशिश करो ?'

यूसुफ़ चुप रहा।

जेलर ने अबके बहुत ही गम्भीर बनकर कहा—'क़ानून के मुताबिक यहाँ छै जमादारों का हर वक़्त मौजूद रहना लाज़मी है। आठ जमादारों में से दो पहले ही छुट्टी पर हैं। इस हालत में मैं तुम्हें छुट्टी किस तरह दे सकता हूँ ?'

यूसुफ़ ने कहा—'अलादीन की छुट्टी कल से मंजूर हो चुकी है, मगर वह गया नहीं। मेरे कहने से वह अपनी छुट्टी मेरे हक़ में बाद के लिए मन्सूख़ करवा लेगा। उसे कोई ख़ास काम तो है नहीं।'

जेलर साहब ने कुछ चिढ़कर कहा—'तुम्हें कौन-सा ख़ास काम है ? ससुर का दफ़नाना ! यह भी कोई काम है !'

कठोर हृदय यूसुफ़ ने सिर झुका दिया—जैसे वह पराजित हो गया हो, मगर जेल के क्लार्क ने उसकी मदद की। वह बोला—'शायद कोई जायदाद-वायदाद का सवाल हो।'

यूसुफ़ खिज उठा। वह अब बरदाश्त न कर सका। उसने कहा—'मैं किसी जायदाद के लालच से नहीं, अपने ससुर की खिदमत के ख़याल से ही वहाँ जाना चाहता हूँ।'

जेलर ने ज़रा ऊँची आवाज़ में कहा—'ससुर का भी कोई नाता होता है ! एक आदमी की लड़की ले ली, इससे वह

उम्र-भर के लिए रिश्तेदार हो गया! यह भी कोई रिश्ता है?'

जेल का क्लार्क मुँह मोड़कर अपनी हँसी छिपाने की कोशिश करने लगा। जेलर का लेक्चर अभी तक जारी था—'देखो यूसुफ़! हिन्दुस्तान-भर में तुम्हारा ही यह रिकार्ड है कि तुमने अपनी पन्द्रह साल की सरकारी नौकरी में एक भी दिन की छुट्टी कभी नहीं ली। एक ज़रा-सी बात के पीछे तुम अपना वह शानदार रिकार्ड तोड़ डालना चाहते हो।'

दानवकाय यूसुफ़ से जब और कुछ न बन पड़ा, तो उस की आँखों में आँसू भर आये।

क्लार्क को अब उस पर सचमुच रहम आ गया। उसने कहा—'तो तुम ज़रूर छुट्टी लेना चाहते हो?'

यूसुफ़ ने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

क्लार्क ने जेलर से कहा—'वह छुट्टी लेना चाहता है। उसकी पूरी छुट्टी बाक़ी है। क़ानूनन हम लोग उसे छुट्टी न लेने के लिये मज़बूर नहीं कर सकते।'

जेलर ने एक बार अपने क्लार्क की ओर अग्निमय दृष्टि से देखा, परन्तु सहसा उन्हें उसी समय एक भूली बात का स्मरण हो आया। क़रीब दो महीने बाद पेशावर के जेल-इन्सपेक्टर महोदय रावलपिण्डी में नियुक्त होकर आने वाले थे। जेलर ने उन्हें भेंट में भेजने के लिए सेबों की एक पेटी का आर्डर दे रखा था। यह पेटी दो दिन बाद काश्मीर से आने वाली थी। क्यों न वह पेटी यूसुफ़ के हाथ ही पेशावर भेज दी जाय।

जेलर साहब ने जैसे एक मिनट तक सोचते रहने के उपरान्त कहा—'तुम पेशावर के रास्ते ही अपने गाँव जाओगे न ?'

'जी हाँ।'

'तो तुम्हें दस दिनों की छुट्टी मैं दे सकता हूँ। मगर आज से नहीं। दो दिन बाद से।'

यूसुफ़ ने नम्रता से कहा—'उनका तो मालूम नहीं, वे कब चल बसें। आज रात को रवाना होकर भी जल्दी-से-जल्दी मैं तीन दिन बाद ही वहाँ पहुँच सकता हूँ।'

जेलर ने कहा—'तुम्हारी छुट्टी मंजूर होने में दो दिन अवश्य लग जायेंगे।'

यूसुफ़ और क्लार्क दोनों ने हैरानी के साथ जेलर साहब की ओर देखा। उन दोनों के लिये यह बात अश्रुतपूर्व थी। क्लार्क ने कहा—'दरख़ास्त पर आप ही के दस्तख़त काफ़ी नहीं हैं क्या ?'

अपनी कमीनगी पर मुसकराहट का परदा डालते हुए जेलर ने कहा—'यार, तुम्हें मेरी सेबों की एक पेटी पेशावर तक अपने साथ ले जानी होगी और पेटी परसों से पहले यहाँ नहीं पहुँच सकती।'

जेलर साहब का यह काम इतना अधिक महत्त्वपूर्ण था कि बेचारा यूसुफ़ आज ही रवाना हो जाने के लिये और अधिक आग्रह नहीं कर सका!

(३)

साइकल के पैडलों पर तेज़ी के साथ पैर मारता हुआ देसराज बैंक की ओर चला जा रहा था। इस समय बारह बजकर पैंतीस मिनट हुए हैं और आज शनिवार है। एक बजे के बाद बैंक से लेन-देन न हो सकेगा। देसराज की जेब में पाँच सौ रुपयों के नोट पड़े हैं। बैंक में जाकर उसे अपने मालिक की एक रेलवे रसीद छुड़ानी है।

सड़क गोलबाग़ से हो कर जहां मालरोड की ओर घूमती है, वहाँ देसराज के मार्ग में सहसा एक बाधा आ खड़ी हुई। सड़क के किनारे बीस-पचीस आदमी जमा थे। देसराज की साइकल जब वहाँ पहुँची, तो दो-तीन आदमियों ने हाथ बढ़ा कर उससे कहा—'बाबूजी, ज़रा ठहरिये।'

देसराज को रुकना पड़ा। पूछने पर मालूम हुआ कि राह चलते एक आदमी को गश आ गया है। उसे क्या बीमारी है, यह किसी को नहीं मालूम; मगर बेहोशी की दशा में भी अत्यधिक व्याकुल और क्षीण स्वर में वह बार-बार पुकार उठता है—'पानी! पानी!'

मगर आसपास कहीं पानी नहीं है।

एक ठेले वाले ने देसराज से कहा—'बाबूजी, वह यहाँ से थोड़ी ही दूरी पर यूनिवर्सिटी के लड़कों का क्लब है। आप यदि साइकल पर वहाँ जाकर एक लोटा पानी ला दे सकें, तो इस बेचारे की जान बच जाय।'

देसराज ने पूछा—'यहां यह कब से पड़ा है?'

किसी ने बताया—'करीब पन्द्रह मिनट से।'

देसराज ने दूसरा सवाल किया—'इसे क्या बीमारी है ?'

एक मुसाफ़िर ने झुँझला कर कहा—'हम लोगों में से कोई डाक्टर तो है नहीं। जो कुछ है, वह आपके सामने है।'

देसराज शायद इस बात पर खिज उठता; परन्तु उसी समय उसी ठेले वाले ने बड़ी नम्रता से कहा—'बाबू साहब, यहाँ इस आदमी का अपना कोई भी नहीं। यदि दो-चार मिनटों में आप साइकल पर जाकर कहीं से इसे पानी ला दे सकते, तो उसके बाद मैं अपने ठेले पर लिटाकर इसे अस्पताल तक छोड़ आता। आप साहब हैं आपको माँगने पर पानी मिल भी जायगा; मगर हम ग़रीबों को इन बड़ी-बड़ी इमारतों में कोई घुसने भी न देगा।'

देसराज के जी में सचमुच दया का संचार हो आया। वह खुद भी एक ग़रीब बाबू है—ऐसा ग़रीब बाबू, जिसे अपने जीवन-निर्वाह में इन ठेले वाले और झलीवाले मज़दूरों से भी बढ़ कर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसका मालिक उससे दिन में बारह घण्टे और चार सप्ताहों में सत्ताइस दिन (क्योंकि उसकी दूकान महीने में एक ही दिन बन्द होती है) कसकर काम लेता है, तब जाकर उसे तीस रुपया मासिक मिलता है। वह भी यदि ग़रीबों के दुख-दर्द और उनकी असहाय अवस्था को नहीं समझेगा, तो और कौन समझेगा ? वह देख ही रहा था कि कालेज के विद्या-

र्थियों की साइकलें और अमीरों की कारें काफी संख्या में उसी सड़क पर से होकर इधर-उधर निकल जाती हैं, किसी को इस ओर ध्यान देने की फ़ुरसत नहीं है। मगर उसी समय उसकी निगाह अपनी घड़ी पर पड़ी। बारह बज कर पैंतालीस मिनट हो चुके हैं। पन्द्रह मिनटों के बाद बैंक में न तो रुपये ही जमा कराये जा सकेंगे और न रेलवे रसीद ही ली जा सकेगी। कल रविवार है। माल मिलने में दो दिन की देर हो जायगी, और वह स्वतन्त्र नहीं है!

हृदय की सम्पूर्ण भावुकता को कुचलकर देसराज साइकल पर सवार हो गया और कुछ गज़ आगे बढ़ कर वह कहता गया—'बीस-पचीस मिनट में मैं वापस आता हूँ।'

बैंक से अपना काम समाप्त करके देसराज जब गोलबाग के नज़दीक पहुँचा, तो उसने देखा कि वहाँ तमाशबीनों की भीड़ इतनी अधिक बढ़ गई है कि सड़क पर राह मिलना भी कठिन है।

देसराज साइकल से उतर पड़ा और पास ही खड़े हुए एक आदमी से उसने पूछा—'क्या बात है?'

उसने बताया—'कुछ नहीं, कोई मुसाफ़िर राह चलते सड़क पर गिरकर मर गया है और पुलीस उसकी लाश लेने आई है।'

देसराज ने एक ठण्डी साँस ली और धीरे-धीरे उस भीड़ को पार करके वह पुनः साइकल पर सवार हो गया। पाँच सौ रुपयों के पोमेड वैसलीन के पार्सल की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रेलवे रसीद अब उसकी जेब में पड़ी थी!

ठाकुर श्रीनाथसिंह

'सरस्वती'-सम्पादक ठाकुर श्रीनाथसिंह से कौन हिन्दी-भाषा-भाषी परिचित नहीं। अपनी निर्भीकता, निडरता और खुली बात कह देने के लिये प्रायः आपको कटु आलोचना का सामना करना पड़ता है पर ठीक चाहे ग़लत आप अपनी बात पर अड़े रहते हैं।

आयु आपकी लगभग पैंतीस वर्ष की है। आप पुराने साहित्य-सेवी हैं १९२५ में आपने पहले पहल लिखना आरम्भ किया कई दैनिक और साप्ताहिक पत्र पत्रिकाओं के सम्पादन विभाग में काम करने के बाद आप आजकल 'सरस्वती' और 'बाल-सखा' के सम्पादक हैं।

कुशल सम्पादक होने के साथ ही साथ आप एक कुशल कहानी तथा उपन्यासकार हैं। भाषा आपकी सरल सीधी और शैली मार्मिक है। आपके तीन उपन्यास 'उलझन' 'जागरण' और 'क्षमा' प्रकाशित हो चुके हैं। अभी हाल ही में 'नयन तारा' नाम से आपकी कहानियों का संग्रह प्रकाशित हुआ है।

'बालक का सुधार' आपकी एक अत्यन्त सुन्दर रचना है। मारपीट के बदले यदि बच्चों को प्यार से समझाया जाए तो उसका प्रभाव कितना जल्दी होता है, यही इस कहानी में कुशलता-पूर्वक चित्रण किया गया है।

बालक का सुधार

रामगुलाम अपनी खाट पर लेटे-लेटे अख़बार पढ़ रहे थे। नीचे ज़मीन पर उनका प्यारा बेटा नरेन्द्र स्लेट पर इस तरह ध्यान लगाये बैठा था, जैसे बगुला मछली की ताक में तालाब पर ध्यान लगाकर बैठता है। शायद नरेन्द्र एक प्रश्न का उत्तर निकाल रहा था। बगुला तो मछली को खाता है, परन्तु नरेन्द्र इस उत्तर को कैसे खायेगा? वह लड्डू तो है नहीं। तब उस उत्तर के पीछे वह परेशान क्यों हो? बड़ा होने पर वह उत्तर उसे काम देगा, यह तर्क अभी उसके दिमाग़ में नहीं उत्पन्न हुआ था। उसने सिर्फ खेलना सीखा था। खेलने में उसे बड़ा मज़ा आता था, पर खेलने की, विशेषकर सड़क के लड़कों के साथ खेलने की, उसे सख्त मनाही थी। अब वह करता तो क्या करता? ऊपर पिता की भयानक आँखें थीं, और आगे वह छोटी सी स्लेट, जो उसे अथाह गहरे, काले समुद्र की भाँति दिखाई पड़ रही थी, जिसमें डूब मरने का उसे साहस

न होता था। बेचारा लड़का सब प्रकार से सताए हुए कैदी की भाँति सिर झुकाये बैठा था।

उसने घर के बड़े-बूढ़ों से सुना था कि यह संसार एक बड़ा भारी जेलख़ाना है ईश्वर पापियों को यहाँ भेजता है। जब उनके सब पाप कट जाते हैं। तब वे यहाँ से छोड़े जाते हैं अर्थात् मुक्ति पाते हैं। जिन लोगों ने नरेन्द्र के कानों तक संसार के सम्बन्ध में यह तर्क पहुँचाया था उन्होंने चाहे संसार को इस रूप में न देखा हो, पर नरेन्द्र उसे बिलकुल इसी रूप में स्पष्ट देख रहा था। देखने की कौन कहे, अनुभव कर रहा था। कभी-कभी वह सोचता था कि घर से भाग जाये और सड़क के लड़कों में जा मिले और कभी घर लौट कर न आवे। पर उसे साहस न होता था। जब उसे यह ध्यान आता था कि बाबू जी पकड़ पायेंगे तो मार ही डालेंगे, तब वह और भी सिकुड़ कर सहम-सा जाता था।

अपने जी में कुछ इसी प्रकार की बातें सोचता हुआ आज नरेन्द्र अपने पिता की चारपाई के पास खूंटे के समान गड़ा बैठा था, परन्तु उसका चंचल चित्त खिड़कियों के बाहर बार-बार जाने लगा। पर वह ज्यादा दूर तक न जा सकता था, क्योंकि वह पास ही लेटे हुए पिता से बेहद डर रहा था?

एकाएक रामगुलाम ने पूछा—निकला ?

नरेन्द्र चौंक पड़ा। वह ऐसा दुबक कर बैठ गया जैसे किसी पर हमला करने को है।

'आ ही जायगा। खाना ठण्डा हो रहा है। उठो।'

'तुम लड़के को बिगाड़ डालोगी। वह प्यार किस काम का जो लड़के को आवारा बना दे।'

'घर में रहने से तो वह रोकर मर जायगा।'

और आवारा लड़कों में उसका जाना क्या उसके हक़ में अच्छा है ? उन लड़कों के साथ में पड़कर वह चोर डाकू और हत्यारा बनेगा । अपना जीवन नष्ट करेगा और हमारे तुम्हारे मुँह पर कालिख पोतेगा।

'कैसी बातें करते हो ? जितने लड़के अपने घरों से बाहर सड़क पर खेलते हैं, सभी आवारा नहीं हैं। सब मनुष्यों के ही लड़के हैं। सभी मां-बाप खुद चाहे जैसे हों, अपने बेटों को भला बनाना चाहते हैं।'

'जो अपने लड़कों को अच्छा बनाना चाहते हैं, वे उन्हें सड़क के कुत्तों में बुरी आदतें सीखने नहीं भेजते।'

'क्या कहते हो ? रात-दिन हमारे और तुम्हारे साथ रहने से लड़का जो अच्छी आदतें सीखेगा वे उसके सड़क पर जाने से क्या नष्ट हो जायँगी।'

'हाँ-हाँ।'

गलत

'मैं ऐसा नहीं समझती । मनुष्य अच्छी बातें जल्दी सीखता है, बुरी बातें देर में।'

सत्य

'बिलकुल ग़लत, बिलकुल ग़लत। मनुष्य बुराई पहले सीखता है—सबसे पहले उसे बुराइयाँ अधिक प्यारी मालूम होती हैं।'

'तब तो कोई इलाज नहीं है।'

'इलाज है। उसे घर से बाहर मत निकलने दो।'

'खैर देखा जायगा। चलो भोजन करो।'

बड़ी मुश्किल से बहुत अनुनय-विनय के बाद रामगुलाम ने भोजन किया।

नरेन्द्र जब घर लौटकर आया तब पिता को न पाकर बहुत खुश हुआ। सीधा माँ के पास आकर बोला—माँ मैं रोज़ खेलने जाऊँगा।

माँ ने कहा—नहीं बेटा! अपने घर में खेलो। बाहर जाने से तुम्हारे बाबू जी नाराज़ होते हैं।

'क्यों अम्माँ ?

'वह तुमको अच्छी-अच्छी बातें सिखाना चाहते हैं, अच्छी अच्छी किताबें पढ़ाना चाहते हैं।'

'वह कुछ नहीं सिखाते, माँ, सिर्फ मारते हैं। मैं उन से कुछ नहीं सीखूँगा। मुझे तुम सिखाओ।'

माँ-बेटे में इसी प्रकार बहुत देर तक बातें हुईं।

उस दिन से रामगुलाम ने नरेन्द्र को पढ़ाना बन्द कर दिया और उसकी ओर से उदासीन रहने लगे पर उनका यह भाव बहुत दिनों तक न रहा। शीघ्र ही वह एक नई स्लेट ले आये और नरेन्द्र को फिर अपने पास बुलाने लगे।

एक दिन नरेन्द्र को समझाते हुए उन्होंने कहा—बेटा, अपने घर में ही खेला करो। सड़क के लड़के बड़े आवारा

होते हैं। वे तुमको चोर या डाकू बना देंगे और तुम पकड़े जाओगे।

'हाँ, बाबू जी ? यह बात तो है । परन्तु बारी-बारी से सब चोर बनते हैं। बड़ा मज़ा आता है। आज तो मन्ना चोर बना था।'

'वह काछी का लड़का ?'

'हाँ।'

'वह साला जन्म का चोर है।'

बाबू जी उसे गाली न दो। वह बड़ा अच्छा लड़का है। कल उसने मुझको अपनी पीठ पर चढ़ाया था। गोविन्द भी बहुत अच्छा है । उसने मुझे अपनी वंशी बजाने को दी थी। गुन्तू और भी अच्छा है। वह अपना गधा ले आता है और सबको चढ़ाता है।

रामगुलाम के मुँह में मशीनगन सी लग गई। लगे चिल्लाने-चुप, चुप ! ख़ामोश ! सूअर ! मुझे उपदेश देने चला है। बाप बना जा रहा है । नालायक ! भाग, हट यहाँ से ठहर ! ठहर ! ज़रा तेरे कान गरम कर दूँ। बोल ! अब तो सड़क पर अकेले नहीं जायगा। बोल ! बोल !

हल्ला सुनकर नरेन्द्र की माँ फौरन ही आ पहुँची नरेन्द्र दौड़कर उसके पैरों से लिपट गया और लगा सिसक-सिसक कर रोने।

'अरे ? सड़क के लड़कों को बुरा बताते हो ! और तुम

लड़के को क्या सिखलाते हो ?'

'बस ! ले जाओ। इसको यहाँ से। भाड़ में झोंक दो। जो तुम्हारे जी आवे करो, इस संसार में तुम्हारे ही तो एक लड़का पैदा हुआ है।'

माँ-बेटा दोनों आँखों में जल भरे वहाँ से चले गये।

(३)

नरेन्द्र की माँ के सामने ख़ासा धर्म सङ्कट उपस्थित था। वह पति और पुत्र दोनों को प्रसन्न रखना चाहती थी। पति की उदासी और पुत्र के आँसू उससे देखे नहीं जाते थे।

एक दिन रामगुलाम शान्तभाव से बैठे थे। उसने कहा—बेटे को स्कूल में भर्ती करा दो। वहाँ लड़कों से उसका जी भी बहलेगा और तुम्हारे सामने कोई उलझन भी न रहेगी।

'स्कूल के लड़के और भी आवारा होते हैं। माँ-बाप विद्या सीखने के लिये उन्हें स्कूल भेजते हैं और वहाँ जाकर वे बदमाशी सीखते हैं।'

'तब तुम लड़के को क्या कैद करके रखना चाहते हो ?'

'मैं उसे आदमी, इन्सान, मनुष्य, आदर्श मनुष्य बनाना चाहता हूँ। जब तक वह अपना हानि, लाभ समझने लायक न हो जाय मैं उसे किसी लड़के से नहीं मिलने जुलने दूँगा।'

खूब ! तुम्हारा ज़रा सा घर, छोटा सा आँगन है। इसमें लड़का कहाँ खेले ? किसके साथ खेले ?

'खेलकर क्या करेगा ? यह तो सीखने की उम्र है ।'

'तुम को बहुत बड़ा आदमी होना था । तुम्हारे घर से मिला हुआ बाग़ होता, उसमें लड़का खेलता ! पचासों नौकर होते जो उसे खेलाते ! दस बीस मास्टर लगे होते जो उसे पढ़ाने आते । क्यों ?'

'यह और भी बुरा होता । अमीरों के लड़कों को नौकर और मास्टर मिलकर बिगाड़ देते हैं ।'

'संसार में एक तुम्हीं बनाने वाले हो, बाकी सब बिगाड़ने वाले हैं क्यों ?'

'तुम नहीं समझ सकतीं ! मगर ईश्वर स्त्रियों को भी उतना ही दिमाग़ देते जितना पुरुषों को देते हैं तो स्त्री-पुरुष में इतना अन्तर ही क्यों देखने में आता ?'

Wrong Said

बीमारी ला इलाज देखकर स्त्री चुप हो रही ।

अब नरेन्द्र की प्रसन्नता के लिये वह क्या करे ? अन्त में उसे एक तरकीब सूझी । जिन लड़कों के साथ नरेन्द्र खेलने जाता था उन सबसे उसने घनिष्ठता स्थापित करने का निश्चय किया । उसने सोचा कि इससे उसे इस वायु-मण्डल को समझने और सुधारने में सहायता मिलेगी जिसमें उसका बेटा पलकर बड़ा होना चाहता है ।

माता का इशारा पाते ही नरेन्द्र अपने साथियों को घर लाने लगा । उनमें ऊँची जाति के भी कुछ लड़के थे पर अधिकतर निम्न श्रेणी के—चमार, धोबी और काछी आदि

के ही लड़के थे। नरेन्द्र को इस बात की हिदायत थी कि वह अपने साथियों को सिर्फ दोपहर के समय लावे। नरेन्द्र इस पर पूरा अमल करता था, क्योंकि और समय में उसके पिता घर पर ही रहते हैं।

धीरे-धीरे नरेन्द्र की माँ उन सभी बालकों को प्यार करने लगी। सबों के उसने प्यार के नाम भी रख लिये वे सब वैसे ही थे, जैसे उसका बेटा था। जैसे नन्हा पौधा बढ़कर विशाल वृक्ष बनता है वैसे ही वे सब लड़के भी बढ़कर पूर्ण मनुष्य होने का प्रयत्न कर रहे थे। अवसर दिया जाय तो सभी मनुष्य पूर्ण बन सकते हैं अवसर न दिया जाए तो जैसे छाया का पौधा वृक्ष नहीं बन सकता, वैसे ही बालक भी मानवीय पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता। इस बात को नरेन्द्र की माँ ने समझ लिया था। उसका यह विश्वास था कि नदी का बहाव जैसे समुद्र की ओर होता है, वैसे ही मनुष्य-जीवन का उच्च आदर्शों की ओर। यह बात न होती तो संसार रहने के लायक न होता, समाज के नियमों की कोई परवा न करता।

नरेन्द्र की और उसके इन साथियों की धीरे-धीरे वह स्वयं सहेली बन गई। उनकी रग-रग से वह परिचित हो गई उसको यह पता चल गया कि अच्छी या बुरी पोशाक और अच्छे या बुरे भोजन से प्रभावित शरीर के अतिरिक्त मनुष्य के बच्चों में और कोई भेद नहीं होता। गन्दी बातें करना और

गालियाँ बकना लड़के माँ-बाप से सीखते हैं, इसलिये इसमें उनका कोई कसूर नहीं।

रामगुलाम को जब शाम-सवेरे नरेन्द्र स्थिर दिखाई पड़ने लगा तब उन्होंने समझा कि उनकी डाँट-डपट काम कर गई है। उन्हें क्या पता था कि सड़क के आवारा लड़के उनके घर पर ही घंटों बैठते हैं। वे अपने दफ़्तर में अपने साथियों से अक्सर कहते—मैं अपने लड़के को घर से बाहर नहीं निकलने देता। बाज़ारू लड़कों से उसे नहीं मिलने देता। वह बड़ा आदर्श भोला भाला लड़का है। संसार की किसी बुराई का उसे पता नहीं।

इस पर उन के साथियों में से एक कहता—मैं बिलकुल इस का उलटा करता हूँ। मेरा लड़का जहां चाहे जा सकता है। शहर की एक-एक गली का उसे पता है। संसार की सब बुराइयाँ उसे मालूम हैं। वह मुझ से सब बताता है। कोई बात नहीं छिपाता। हर बात में मैं उसे सलाह देता हूँ। और मैंने उसे आज़ादी दे दी है कि मेरी सलाह वह ठीक न समझे तो न माने।

इस पर रामगुलाम कहते—आप अपने लड़के को शैतान बना रहे हैं। तब उन्हें उत्तर मिलता—आप अपने लड़के को पाषाण बना रहे हैं। फिर दोनों में वाक्-युद्ध होता और बड़ा मज़ा आता।

अब एक दिन का हाल सुनिये। एक दिन दफ़्तर में

अचानक आधे दिन की छुट्टी हो जाने से रामगुलाम अपने इसी मित्र के साथ घर आ रहे थे। एकाएक उन्हें लड़कों का एक जलूस आता दिखाई पड़ा। बीच में एक गधा था, जिस पर उन्हीं का लड़का सवार था और उसके सिर पर काग़ज़ की लम्बी टोपी डटी थी। लड़के चिल्ला रहे थे—अलाउद्दीन ख़िलजी दक्खिन फ़तह करने जा रहे हैं। भागो, बचो, रास्ता दो। हो! हो! वाह! वाह!

रामगुलाम ने क़रीब आ कर नरेन्द्र को पहचाना। उनके गुस्से का ठिकाना न रहा। उन्होंने उसके सिर से काग़ज़ की टोपी उतार ली और उसे टुकड़े टुकड़े कर डाला और कहा—शैतान के बच्चे! गधे!

नरेन्द्र के काटो तो खून नहीं। वह कीड़े की भाँति गुड़ी-मुड़ी हो कर कब गधे से नीचे आ गिरा, यह किसी ने न जाना। बादशाह अलाउद्दीन पर रास्ते में इस तरह हमला हो जायगा, इसके लिये लड़के तैयार न थे। पर आख़िर उस समय वे बने तो थे सिपाही ही और फिर दक्खिन फ़तह करने जा रहे थे। वे सब के सब अड़कर खड़े हो गये और रामगुलाम से बोले ख़बरदार जो आगे बढ़े! रामगुलाम भी कुछ चौंके। तब तक चार पाँच लड़के उनकी टाँगों से लिपट गये, दो बड़े लड़कों ने उन की कमर पकड़ ली। गुत्थम-गुत्था होने लगी। जितना भी वे अपने आपको लड़कों से छुड़ाने का यत्न करते, उतना ही लड़के उनसे चिपटते जाते। रामगुलाम

ने अपने साथी से कहा—पुलिस में खबर करो। ये बदमाश लड़के हैं। इस तरह न मानेंगे।

लड़कों ने चिल्ला कर कहा—हम पुलिस से नहीं डरते, हम तुम से नहीं डरते। हम खिलजी बादशाह के सिपाही हैं।

रामगुलाम के साथी ने लड़कों को सम्बोधित करके कहा—बेशक तुम बड़े बहादुर लड़के हो। अब इन को छोड़ दो। अपनी सवारी आगे ले जाओ।

'नहीं इनको हम नहीं छोड़ेंगे।'

'क्या करोगे ?'

'अम्माँ के पास ले जायेंगे।'

'अच्छा तो इस तरह न चिपटो, इन्हें छोड़ दो। ये तुम्हारी अम्माँ के पास चलेंगे।'

यह कहते हुए रामगुलाम के साथी ने उनसे कहा—कोई हर्ज नहीं। चल कर देखो कि यह तुम्हें कहाँ ले चलते हैं।

'मैं आप से कहता हूँ कि पुलीस बुलाइए।'

'हम पुलीस हैं' लड़के चिल्लाने लगे। और कोई उपाय न देखकर रामगुलाम को लड़कों के साथ आगे बढ़ना पड़ा। उनका साथी भी पीछे पीछे चला। ये सब लड़के रामगुलाम को उन्हीं के घर पर ले गये। नरेन्द्र मौका पाकर चुपके से पहले ही भाग आया था। वह घबराया हुआ अपनी माँ को पकड़े खड़ा था। नरेन्द्र की माँ को देखकर लड़कों ने चिल्ला कर कहा—अम्मां यह आदमी नरेन्द्र को मार रहा था।

'इन्हें छोड़ दो नरेन्द्र के पिता हैं।'

लड़के अपराधी की भाँति एक तरफ खड़े हो गये। रामगुलाम के साथी ने चुमकार कर कहा—डरो नहीं, तुम सब बहादुर लड़के हो। तुम सब ख़िलजी बादशाह हो। आहा! हा! हा!

लड़के हँसने लगे और एक-एक करके वहीं बैठ गये।

'हम क्या जानते थे कि वह नरेन्द्र के बाबू जी हैं?' वे आपस में बातें करने लगे।

रामगुलाम की स्त्री ने कहा—कोई हर्ज नहीं पर अब ऐसा कभी न करना। जाओ खेलो।

सब लड़के भागे। नरेन्द्र बोला—माँ, मैं भी......।

माँ ने पति की ओर देखा। रामगुलाम ने कहा—जाओ तुम पुत्र नहीं हो, दुश्मन हो, किसी पूर्व-जन्म का बदला लेने के लिए मेरे घर में पैदा हुए हो।

नरेन्द्र भी लड़कों से जा मिला। सब लड़के इस तरह खेलने लगे, मानों कुछ हुआ ही नहीं।

रामगुलाम के साथी ने कहा—ख़ैर, आप एक लड़के को हमेशा क़ैद करके रखते थे आज सब लड़कों ने मिलकर आप को क़ैद कर लिया। अच्छा बदला लिया।

पर रामगुलाम ने इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। उन्होंने घर से बाहर निकल कर सड़क की ओर देखा—नरेन्द्र को लड़के फिर गधे पर चढ़ाये लिए चले जा रहे थे। वह खूब

खुश हो रहा था। वहां थी केवल प्रसन्नता, एक मात्र प्रसन्नता! वे घर में लौट आये और खूँटी पर कोट टाँगते हुए अपने साथी से बोले—बाप बनने में बड़ी मुसीबतें हैं।

पर साथी दूसरी ओर मुँह करके मुस्करा रहा था और स्त्री अपनी हँसी रोककर इशारे से नाश्ता लाने के सम्बन्ध में कुछ पूछने का प्रयत्न कर रही थी।

श्री कृष्णानन्द गुप्त

कुछ देर की बात है गुप्त जी बड़े ज़ोरों से हिन्दी में कहानियां लिख रहे थे। कविवर मैथिलीशरण जी के साथ चिरगांव (झांसी) में रहते थे। तभी आपकी कहानियों के दो संग्रह निकले। 'केन' नाम का एक उपन्यास निकला और स्व॰ प्रसाद जी के नाटकों पर एक आलोचना की पुस्तक भी निकली पर फिर अचानक आपने कुछ न लिखने का निश्चय कर लिया और अपने मन को होज़री के कारोबार में लगा दिया। यह प्रसन्नता की बात है कि आप अपनी सुन्दर कहानियों के साथ पूरे पांच वर्ष की ख़ामोशी के बाद फिर हिन्दी-क्षेत्र में उतरे हैं।

उतार चढ़ाव आपने अपने जीवन में बहुत देखे हैं और यही कारण है कि आप की कहानियों में एक मीठा दर्द है, जो धीरे धीरे पाठक के मन-प्राण पर अधिकार कर लेता है।

अपराधी

बद्ल की पत्नी को आज सातवां लंघन था। वैद्य ने कल पथ्य देने को कहा था। उसके लिए पंचकोल की आवश्यकता थी। किन्तु गाँव में कोई पंसारी नहीं था। इसलिए पंचकोल लेने के लिए उसे निकट की बस्ती में जाना पड़ा। बस्ती वहाँ से तीन मील दूर थी। वह घर से दो पैसे लेकर चला था। वे दो पैसे उसने अपने एक पड़ौसी से आधा सेर ज्वार के बदले में लिये थे। निस्सन्देह पंचकोल के लिए बहुत थे।

बस्ती में पहुँचकर उसकी दृष्टि हलवाई की दूकान पर पड़ी। उसे अपनी आठ वर्ष की कन्या पार्वती की याद हो आई। वह जब कभी बस्ती आता तब पार्वती के लिए खाने की कुछ चीज़ अवश्य ले जाता। इसके अतिरिक्त आज वह कई दिनों के बाद बाज़ार आया था। उसने सोच लिया कि वह पंचकोल एक ही पैसे का लगा। एक पैसे की उसने जलेबियाँ ले लीं। दो से भी कुछ कम आईं। उसके बाद पंसारी की दूकान से पंचकोल की पुड़िया लेकर वह घर चल दिया।

उस समय दुकानों में संध्या-प्रदीप प्रज्वलित हो चले थे। किन्तु बस्ती के बाहर अब भी अस्तोन्मुख सूर्य की सुनहली किरणें गेहूँ के पके हुए खेतों को और भी सुनहला बना रही थीं। बदल अकेला जा रहा था। स्थान की निर्जन अवसन्नता ने उसे चिन्ताशील बना दिया। वह सोचने लगा—फ़सल बिगड़ गई है, ज़मींदार का लगान देना है, साहूकार का कर्ज़ अदा करना है, पार्वती का विवाह करना है, पटवारी दादा परसों से बटवारे का रुपया माँग रहे हैं। ज्वार बेचकर उन्हें वह रुपया देना है–इसी प्रकार की सैकड़ों बातें।

इस समय वह सड़क के मोड़ पर पहुँच गया था। गाँव वहाँ से अभी दो मील दूर था। सहसा बदल की दृष्टि सड़क पर खड़ी हुई एक मोटर पर पड़ी, जो पहले पेड़ों की ओट में छिपी थी। किसी साहब की थी, अकस्मात् फेल हो गई थी। ड्राइवर आध घंटे से उसे चालू करने की कोशिश में था। किन्तु वह टस से मस नहीं हो रही थी। हठीले असहयोगी की तरह साहब से पक्का निष्क्रिय-प्रतिरोध किये बैठी थी। अन्त में ड्राइवर ने साहब से कहा 'हुजूर ब्रेक सँभालें, मैं पीछे से ढकेलता हूँ। फौरन स्टार्ट हो जायगी।

साहब ने एक बार भ्रकुटि-भङ्ग-पूर्वक ड्राइवर को देखा। फिर उठने का उपक्रम किया। इतने में उसकी नज़र बदल पर पड़ी। बदल मोटर गाड़ी देखकर सड़क के किनारे खड़ा हो

खड़ा हो गया था। उसने इतने पास से कभी मोटर नहीं देखी थी। वह कौतुक-पूर्ण दृष्टि से कभी साहब, कभी मोटर और कभी मोटर स्टार्ट करने के परिश्रम से क्लान्त हुए ड्राइवर को देख रहा था। साहब ने उसकी ओर अंगुलि-निर्देश करके कहा 'यू !' बदल साहब की बात न समझा। किन्तु एकदम आगे बढ़ आया। साहब ने तब ड्राइवर से कहा—'वेल, इस आदमी से कहो, मोटर ढकेले।'

साहब जहाँ के तहाँ बैठ गये। ड्राइवर ने हैंडल गाड़ी में फेंककर साहब की आज्ञा का पालन किया। बदल से कहा, 'भाई, ज़रा पीछे हाथ लगा दो।' बदल मुस्कराया—शायद अपनी बैलगाड़ी की याद करके जो बीच मार्ग में इस प्रकार कभी नहीं रूठती। उसने एतराज नहीं किया। प्रत्युत इस मोटर गाड़ी पर, बीच मार्ग में पंगु हो गए इस यंत्रयान पर अपने बल की परीक्षा करने के विचार से उसका उत्सुक ग्रामीण हृदय इस प्रकार की आत्म-तुष्टि-पूर्ण प्रसन्नता से पुलकित हो उठा। जलेबियों का दोना सड़क पर रखकर वह मोटर के पीछे लग गया। ड्राइवर ने 'हूँ' कहा। बदल ने मोटर पर हथेलियाँ जमाकर ज़ोर लगाया। मोटर खिसकी। वह खुश हुआ। ड्राइवर बोला 'वाह भैया, थोड़ा और'। बदल हुँकार कर के मोटर ढकेलता हुआ बोला 'जितना कहो उतना।' मोटर चली। आगे ढाल थी। तब बदल को दौड़ना पड़ा। सहसा फट-फट-फट। मोटर स्टार्ट क्या हुई, अपनी क्षणिक दुर्बलता

के ख़्याल से लज्जित होकर मानवी शक्ति से अपना पिण्ड छुड़ाने के लिये व्यग्र हो उठी। बदल कुछ भी नहीं समझा। समझने के पहले ही मोटर से उसके हाथ छूट गये। दूसरे क्षण वह औंधे मुँह सड़क की गिट्टी पर गिर पड़ा। अपनी सम्पूर्ण शक्ति से गिरा। मोटर मानों अट्टहास करके उसका उपहास करती, पथ की धूलि उड़ाती चली गई। एक मील निकल गई। बदल को तब तक होश न आया। चेत आते ही उसने अपना माथा टटोला। हाथ किसी चीज़ से भीग गया। उसे बड़ा अचम्भा हुआ। उसने पुनः टटोला। माथा फट गया था और उससे रुधिर की धार बह रही थी। उसने हथेली टेककर उठना चाहा। इस प्रयत्न में उसका सर्वाङ्ग धनुष की प्रत्यंचा की भाँति काँप गया। घुटनों में असह्य पीड़ा बोध हुई। वह किसी तरह उठा और बाएँ हाथ की हथेली से क्षत-स्थान को दबाकर बैठ गया। रुधिर फिर भी निकलता रहा। क्रमशः उसका शरीर अवसन्न हो चला और वह अचेत होकर गिर पड़ा।

× × ×

उन्मुक्त खेतों की शीतल वायु के स्पर्श से बदल की आँख खुल गई। उसने अपने चारों ओर देखा। उस समय सवेरा हो रहा था। धीरे धीरे उसे संध्या की घटना का स्मरण हुआ। रात में गहरी नींद आ जाने से उसकी दुर्बलता दूर हो गई थी। वह उठकर बैठ गया। उसे पत्नी की याद आई।

वह उसके लिये पंचकोल लेकर लौट रहा था। और एक हाथ में जलेबियों का दोना भी था। परन्तु ये दोनों चीज़ें उस स्थान पर नज़र नहीं आईं। एक बार उसके जी में आया कि वह फिर से लौट कर बस्ती जाय। परन्तु अभी बाज़ार नहीं खुला होगा, इसके अतिरिक्त पंचकोल के लिए अब उसके पास पैसे भी नहीं थे।

वह हथेली टेककर उठा और गाँव की तरफ़ चल दिया। घुटनों में दर्द हो रहा था, इसलिए घर पहुँचते पहुँचते दिन चढ़ आया। पार्वती ने दूर से ही अपने पिता को देख लिया था। वह दौड़कर आई और उसके घुटनों से लिपट गई। फिर अपने दीर्घ नेत्रों से उसकी ओर देखकर बोली 'दद्दा, रात भर कहाँ रहे ?'

बदल उसके माथे पर हाथ फेर कर बोला—

'तुम्हारे लिए जलेबी लेने गया था।'

पार्वती ने तुरन्त पूछा—'कहाँ हैं, लाओ।'

बदल ने कहा—'थोड़ी देर में लाऊँगा।'

बदल भीतर पहुँचा। पैरों की आहट पाकर उसकी पत्नी पहले से द्वार की ओर देख रही थी। उसने बदल को देखते ही कहा—'कैसे आदमी हो—'

'क्यों ?'

'रात भर कहाँ रहे ?'

'क्या बताऊँ !'

'कुछ तो, क्या किसी ने पकड़ लिया था ?'

'नहीं ।'

'और यह धोती में क्या लगा है ' सहसा रुधिर का कत्थई रंग का दाग देखकर उसने पूछा ।

'कुछ नहीं । इसी वजह से तो रात में घर नहीं आ सका । एक जगह ठोकर खाकर गिर पड़ा था ।'

'गिर पड़े ! राम, राम ! देखो तो कितनी चोट लग गई है ! क्या लौटते समय अँधेरा हो गया था ?'

'हाँ । थोड़ा हल्दी, चूना है ?'

'चूना कहाँ से आया ! हल्दी है, सो भी पिसी हुई नहीं है । भजन के यहाँ मिल जायगी । उसके यहाँ चूना भी होगा ।'

बदल घर से बाहर निकल कर अपने पड़ौसी के पहुँचा । न जाने उसने मोटर ढकेलने से गिरने की बात अपनी पत्नी से क्यों नहीं कही । वह ऐसी लज्जा की बात शायद किसी से भी नहीं करना चाहता था । भजन के यहाँ उस समय गाँव के कई खास आदमी बैठे हुए थे–पटवारी, मुखिया, चौकीदार इत्यादि इत्यादि ।

बदल ने सबको बारी बारी से राम राम करके कहा—'भैया भजन, थोड़ा चूना और पिसी हुई हल्दी दे दो ।'

उस समय, जान पड़ता है, वहाँ किसी संगीन मामले की चर्चा चल रही थी, क्योंकि बदल को देखकर सभी चुप हो गये ।

भजन ने कहा—'सबेरे सबेरे हल्दी चूना किसे चढ़ाना है।'

'क्या बताऊँ, रात को ठोकर लग गई।'

'अच्छा ! दिखाई नहीं दिये। क्या बस्ती गये थे ?'

'हाँ।'

'तभी परबातिया रोती फिरती थी। क्या बहुत रात गए लौटे थे ?'

'अभी आया हूँ।'

'अभी ! तुमने सुना ?'

'क्या ?'

चौकीदार ने उसे देखा।

परन्तु भजन को पूरी बात कहने की आदत थी। वह कहता गया—'हरपुरा के सुनू मोदी के यहाँ चोरी हो गई है।'

बदल ने कहा—'राम, राम ! अच्छा, हल्दी चूना ला दो। फिर मुझे काम देखना है।'

भजन ने भीतर से हल्दी चूना लाकर बदल को दिया। उसके चले जाने पर चौकीदार ने भजन को धमका कर कहा—'तुममें रत्ती भर की अक़्ल नहीं।'

'क्यों ?'—भजन ने पूछा।

'तुम क्या जानो।'

पटवारी और मुखिया ने भी यही बात कही। इसके बाद सभा विसर्जित होगई।

× × ×

बदल दो पैसे उधार लेकर फिर से पंचकोल ले आया। इसके उपरान्त भोजन करके वह खेत पर जाने के लिये तैयार हुआ। घर से बाहर निकला ही था कि सामने मानिक चौकीदार को देखकर ठहर गया। बोला—'बैठो, तमाखू पीलो।'

मानिक ने अपने पीतल के तारों से सजे हुए मोटे चिकने डंडे पर शरीर का सारा भार डालकर कहा—'तमाखू फिर पिऊँगा, पहले मेरे साथ चलो।'

'कहाँ?' बदल ने पूछा।

'थाने में।'

'थाने में! किस लिए?'

'दरोगा जी ने बुलाया है।'

अपने स्वर को यथाशक्ति नम्र बनाकर बदल ने कहा—'दरोगा जी ने किस लिए बुलाया है, मानिक भैया।'

मानिक चौकीदार बारूद की भाँति भभक कर बोला—'मैं क्या जानूँ, किस लिए बुलाया है। उन्हीं से पूँछ लेना।

बदल कुछ नहीं बोला—उसे मानिक से ऐसे व्यवहार की आशा नहीं थी। वह चुपचाप उसके साथ हो लिया।

उस समय दारोगा जी कुर्सी पर बैठे हुक्का पी रहे थे। जाति के जाट थे। अपने जाति-गत गुण के अनुसार क़द के कुछ लम्बे थे, परन्तु बदन एकहरा था। उनके छोटे से चेहरे पर लम्बी काली दाढ़ी बहुत खूबसूरत नहीं मालूम होती थी।

आँखें सुर्ख और हमेशा चढ़ी हुई रहती थीं । लम्बी नुकीली नाक शराब पीने से कुछ ज्यादा लाल हो गई थी । सामने ज़मीन पर सुनू मोदी और हरपुरा का चौकीदार बैठा था । वह उन्हीं से बातें कर रहे थे। इतने में बदल को साथ लेकर मानिक वहाँ उपस्थित हुआ।

बदल ने ज़मीन तक झुककर राम राम की और फिर चुपचाप खड़ा हो गया।

दरोगा जी ने कहा—'यह कहाँ मिला ?'

मानिक बोला—'हुजूर, खेत पर जा रहा था।'

उन्होंने बदल से पूछा—'तू कल शाम को कहाँ गया था ?'

बदल ने कहा—'हुजूर बस्ती गया था।'

'किस लिए ?'

'परबतिया की माँ के लिए दवा लाने।'

'वहाँ से कब लौटा ?'

'आज सवेरे।'

'तुझे यह चोट कहाँ लगी ?'

'हुजूर, क्या बताऊँ, कर्मों का फल है—'

उसकी समझ में नहीं आया कि वह दरोग़ा जी से क्या कहे।

'हूँ, बदमाश !' दारोग़ा ने होंठ चबाकर कहा—'समझता है कि तू सब सच कह रहा है, और मैं भी उसे सच समझ रहा हूँ। हरपुरा के चौकीदार ने तुझे नौ बजे के क़रीब सुनू मोदी के मकान के पास घूमते देखा था—'

'नहीं हुजूर।' बदल ने घबड़ा कर कहा 'मैं तो कल हरपुरा गया ही नहीं। रात भर सड़क पर पड़ा रहा।'

'उसके बाद तू मोदी के घर में घुसा और शोरगुल होने पर उसकी एक सन्दूकची लेकर दीवार फाँदकर भाग गया—'

बदल ने हाँफते हुए कहा—'हुजूर, मुझ गरीब को बचाइए। परमेश्वर की सौगन्ध खाकर कहता हूँ, मैं कल हरपुरा नहीं गया। साँझ को बस्ती से लौट रहा था—'

'हरामज़ादा! तुझे यह चोट कैसे लगी? चौकीदार ने खुद अपनी आँख से तुझे दीवार पर से कूदते देखा था। मगर तू फौरन उठकर भाग गया!'

बदल का कंठावरोध हो गया। उसने कहा—'हुजूर, चोट तो मुझे मोटर ढकेलने से लगी है।'

दारोगा हो-हो करके हँस दिया। जैसे शराबी हँसता है। 'हूँ! मोटर ढकेलने से लगी है? कौन सी मोटर? और उसने सिपाही को संकेत किया।

× × ×

बदल को चोरी के अपराध में छः महीने की सजा हुई। इस समाचार पर यदि किसी को विश्वास नहीं हुआ तो उसकी पत्नी को। उसने कहा—'यह असम्भव है।' मगर और लोग यही कहते रहे कि उसने ज़रूर चोरी की है, नहीं तो रात भर रहा कहाँ? और ऐसी चोट घर फाँदने के सिवा और किसी तरह लग ही कैसे सकती है।

श्री अज्ञेय

श्री अज्ञेय का पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन है। आप पंजाब के रहने वाले युवक हैं, पर अधिक तर आप बाहर ही रहे हैं और प्रत्येक प्रान्त से आपने कुछ न कुछ लिया है। कुशल कवि होने के साथ साथ आप सिद्धहस्त कहानी लेखक हैं। जीवन के कटु अनुभवों और देश की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों ने आपके भावुक हृदय पर गहरा प्रभाव डाला है, जिससे आपकी लेखनी में तत्रिता और मार्मिकता आ गई है।

'भग्न दूत' के नाम से आपकी कविताओं का, और 'विपथगा' नाम से आपकी कहानियों का एक संग्रह हाल ही में छपा है।

आजकल आप हिन्दी के प्रसिद्ध मासिक-पत्र 'विशाल भारत' कलकत्ता का सम्पादन कर रहे हैं।

लेकिन जब धनिकों को इस बात का पता चला, तब उन्होंने एक दिन चुपचाप अपने चरों द्वारा उसे पकड़ मँगाया और और एक पहाड़ी के क़िले में क़ैद कर दिया। वहाँ एकान्त में वे उसे सताने के लिए नित्य एक मुट्ठी चबैना और एक लोटा पानी दे देते, बस।

धीरे-धीरे ज्ञान का हृदय ग्लानि से भरने लगा। जीवन उसे बोझ जान पड़ने लगा। निरन्तर यह भाव उसके भीतर जगा करता कि मैं, ज्ञान, परमात्मा का प्रतिनिधि, इतना विवश हूँ कि पेट-भर रोटी का प्रबन्ध मेरे लिए असम्भव है! यदि ऐसा है, तो कितना व्यर्थ है यह जीवन, कितना छूँछा, कितना निरर्थक!

एक दिन वह किले की दीवार पर चढ़ गया। बाहर खाई में भरा हुआ पानी देखते-देखते उसे एकदम से विचार आया, और उसने निश्चय कर लिया कि वह उसमें कूदकर प्राण खो देगा। परमात्मा के पास लौटकर प्रार्थना करेगा कि मुझे इस भार से मुक्त करो, मैं तुम्हारा प्रतिनिधि तो हूँ, लेकिन ऐसे संसार में मेरा कोई स्थान नहीं है।

वह स्थिर, मुग्ध दृष्टि से खाई के पानी में देखने लगा। वह कूदने को ही था कि एकाएक उसने देखा, पानी में उसका प्रतिबिम्ब झलक रहा है और मानो कह रहा है, 'बस, अपने आपसे लड़ चुके?'

* * *

ज्ञान सहमकर रुक गया, फिर धीरे-धीरे दीवार से नीचे उतर आया और क़िले में चक्कर काटने लगा।

और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं।

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

वाजपेयी जी का जन्म संवत् १९५६ वि० में हुआ था आप मंगलपुर ज़िला कानपुर के निवासी हैं और आजकल दारागंज इलाहाबाद में रहते हैं। चौदह वर्ष की अवस्था से ही गृहस्थ-जीवन का उत्तरदायित्व सिर पर आ जाने के कारण आप उच्च शिक्षा से वंचित रह गए। पहले तो अपने गांव ही में कुछ काल तक अध्यापक रहे। परन्तु उस जीवन से संतुष्ट न होकर निकल भागे और होम-रूल लीग कानपुर की लाइब्रेरी में लाइब्रेरियन हो गए। यहां आपको अध्ययन-शीलता का ऐसा चसका लगा कि क्रम क्रम से कुछ साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों के सम्पादन विभाग में कार्य्य करने का सुअवसर पाते गए। चार वर्ष आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सहायक मन्त्री भी रह चुके हैं। इधर अनेक वर्षों से आप स्वतन्त्र रूप से एक साहित्य-सेवी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

वाजपेयी जी का विकास बहुत साधारण जीवन से उठने के कारण, यद्यपि बहुत मन्द गति से हुआ है, तथापि जीवन का असंतोष, भयानक, कटु अनुभूतियों का समुद्रमंथन आपकी इस काल की कृतियों का एक गुण

बन गया है। आपने बहुत लिखा है । आपके कई कहानी-संग्रह और उपन्यास छप चुके हैं। हाल ही में जो चीज़ें आप लिख रहे हैं वे काफ़ी सुन्दर होती हैं।

'महापुरुष' आपकी एक सुन्दर व्यङ्गपूर्ण रचना है।

महापुरुष

कचहरी में बैठा हूँ—नाज़िरात में। ऐसा ही कुछ काम आ गया है। यों काम चाहे न भी लगे, पर कभी-कभी जब मैं ऐसे काम में खुद लग जाता हूँ, तो चारा क्या है? जीवन में तृष्णा है और तृष्णा में द्वन्द्व। और फिर द्वन्द्व ही जीवन है। महाचक्र के इस आवर्त्तन में मैं क्या हूँ, कौन हूँ, जो कचहरी से भागता रहूँ, बचता रहूँ और घृणा से विवर्ण हो-होकर व्यर्थ ही में अपने मन प्राण को आम्लान करता रहूँ। द्वन्द्व से भागकर, कर्तव्य-पराङ्मुख होकर, मनुष्य जायगा कहाँ? हाँ, तृष्णा से भाग सकता है वह। किन्तु क्षण भर के लिए। क्योंकि, अचिर भविष्य में, मनस्ताप से आप ही जल-जलकर, एक बार फिर जब वह फूत्कार कर उठता है, तो सुहासिनी तृष्णा की कोमल गोद ही उसे महोल्लास का पावन जीवन देती है।

हाँ, तो मैंने कहा न मैं नाज़िरात में बैठा हूँ। कुछ सोच रहा हूँ और देख रहा हूँ। सोच सोचकर देखता हूँ और देख देखकर सोचता हूँ। विविध प्रकार के चित्र सामने आ जा रहे हैं।

एक वकील साहिब पैंट में हाथ डाले हुए जा रहे हैं। गति उनकी मन्द है। कोट की बाहरी जेब में मोड़कर रक्खा हुआ चश्मा झलक रहा है। साइकिल पर आये हैं और पैंट के निम्न भाग को मोड़कर जो क्लिप लगाया जाता है, वह अभी तक ज्यों का त्यों लगा हुआ है। उस ओर वकील साहिब का ध्यान नहीं गया है। ध्यान जाये भी क्यों? उसकी ज़रूरत? सिर के बाल सफ़ेद हो गये हैं। पूरे तो नहीं, अधिकांश। लेकिन इससे क्या, बालों की सफेदी कोई चीज़ नहीं होती। दिल जिसका उज्ज्वल है क्या उसके बाल कभी सफ़ेद हो सकते हैं? हो भी जायँ, तो उनका मूल्य क्या? शरीर की वृद्धता हमारा करेगी क्या? असल चीज़ मन है। और वकील साहिब ने जेब में हाथ डालकर देखा, नोट कहीं ग़ायब तो नहीं हो गये। तभी उन्हें निकाल कर गिनने लगे एक दो, तीन ठीक तो है। दस-दस रुपये के तीन नोट हैं और सुरक्षित हैं। फिर दूसरे हाथ से बाहरी जेब में से चश्मा निकालना चाहा। ज़रा सा ऊपर को उठाया भी, किन्तु फिर जहाँ का तहाँ रख दिया और बढ़ चले। किन्तु आगे चलकर फिर लौट पड़े। शायद कोई चीज़ भूल गये हैं।

इसी क्षण एक दूसरे साहब दीख पड़े। खसखसी दाढ़ी है आपकी। बाल अभी सफेद नहीं हुए हैं। लेकिन इच्छा उनकी ऐसी ही जान पड़ती है। गौर वर्ण है। सिर पर गोल, सफेद मारकीन की टोपी है। पायजामा कुछ ऊँचा, पैरों के

गर्द-गुबार से सर्वथा निश्चिन्त। हाथी-कान का पुराने ढब का जूता पहने हुए हैं। शरीर अचकन से चिपका हुआ है, या अचकन ही शरीर से चिपक गई है, कौन जाने ? इस विषय पर मैं बहस नहीं करना चाहता। आप चाहे जो समझ लें, मुझे आपत्ति नहीं। हाँ तो मैं आगे बढ़ता हूँ। बाईं ओर एक दुलाई बग़ल से दबाये हुए हैं और उसके नीचे चारख़ाने का एक डस्टर लटक रहा है। दायें हाथ में टोंटीदार एक लोटा भी है। प्रतीत होता है कि आप इसी वक़्त देहात से चले आ रहे है।

मैं बाहर आ गया था। जाड़े की धूप खड़ी-खड़ी खिल-खिला रही थी।

उन्होंने तपाक से आदाब अर्ज़ किया, तो अपरिचय के कारण मैं क्षण भर उन्हें देखता रह गया। उत्तर में मैंने 'तसलीम अर्ज़' तो किया लेकिन ज़रा सा ठहर कर।

वे बोले—क्यों भाई जान, बाबू चन्द्रप्रकाश साहब वकील किधर तशरीफ रखते हैं ?

मैंने कहा—जान पड़ता है कचहरी में आप शायद पहली ही बार आये हैं।

'जी, आप बहुत बजा फ़रमाते हैं। मैं तो कम्बख्ती का मारा आ भी गया, मगर क़सम कुरान की, जो इसमें एक हरफ भी झूठ हो—मेरे पुरखा तो इस से कोसों दूर रहा करते थे।'

'यह तो नाज़िरात है, मुन्शी जी । यहाँ वकील लोग नहीं बैठते । वे लोग अधिकांश या तो पच्छिम की ओर बैठते हैं, वहाँ उनके अलग-अलग कमरे भी हैं। या फिर उस चौरासी गजे वाली धर्मशाला में जिधर से आप आ रहे हैं।

'अच्छा, तो आप को जो तकलीफ़ दी, उसके लिए माफ़ कीजियेगा। हुजूर का दौलतखाना ?'

'मैं ! मैं तो परदेसी आदमी हूँ, यहाँ ऐसे ही आ गया । (इस) ग़रीब का घर कानपुर जिले में है।'

'तभी। तभी तो मुझे ताज्जुब हो रहा था कि ऐसी सुलझी हुई ज़बान यहाँ इलाहाबाद में कहाँ से आयेगी ! अच्छा, इजाज़त चाहता हूँ—आदाबर्ज़ ।'

वे चले गये।

चले तो गये, लेकिन आगे बढ़कर, जो साहब उनके सामने आये, उनसे भी उन्होंने यही प्रश्न किया—क्यों भाई जान, बाबू चन्दरपरकाश वकील...........?

'मैं बाबू चन्दरपरकाश का मुहर्रिर हूँ कि मुअकिल, जो उनके पीछे पीछे घूमता होऊँ ।

ऊपर से नीचे तक अंगरेज़ी वेष-भूषा में आवृत हैं। सरदी में सताये हुए कभी-कभी सी-सी करने लगते हैं। हवा जो चल रही है। हाथ पर हाथ रगड़ रहे हैं। मुन्शी जी के प्रश्न पर ज़रा देर ठहरे और फिर चल दिये और खीज उठे । बोले—

अजीब देहाती आदमी मिल जाते हैं !

ये साहिब एक वैरिस्टर हैं। अपने एक मित्र से पूछकर मैं अभी जान सका हूँ। कर्कश बहुत हैं आप, प्रायः कहा करते हैं—दुनिया में जितने भी महापुरुष हुए हैं, सब इसी तरह के थे। लोग बात करना तो दूर रहा, उनके सामने होकर निकलने से भी कांपते हैं। आतङ्क वह चीज़ है कि मोची को मंत्री तक बना सकता है।

मेरा काम हो चुका है। बस, मुझे किसी तरह यहाँ चार बजा देने हैं। और अपने मित्र राजेश्वर के साथ चला जाना है। इसी नाज़िरात में वह क्लर्क है। मैंने सोचा—ज़रा सा घूम ही लूँ। ऐसा सजीव बायस्कोप भला और कहाँ देखने को मिलेगा !

एक-एक करके कई इजलासों में घूम आया। कहीं कोई परिचित व्यक्ति नहीं देख पड़ा। न मुन्शी जी ही देख पड़े, न वे वकील साहब—न वे भावी महापुरुष। और मैं सोचता यही हूँ कि इन्हीं लोगों में से कोई मिल जाता तो अच्छा होता। वकील साहब को केवल थोड़ी देर देखना चाहता हूँ बैरिस्टर साहब से उलझ पड़ने को मन है, और मुन्शी जी से मिलकर उनकी बातें सुनने की लालसा है।

एक ओर पीपल के पेड़-तले धूप से लिपटा हुआ मैं चुपचाप खड़ा हुआ था कि राजेश्वर ने आफ़िस से बाहर आकर कहा—चलो तुमको घुमा लायें। यहाँ खड़े-खड़े अकेले में

बन गया है। आपने बहुत लिखा है। आपके कई कहानी-संग्रह और उपन्यास छप चुके हैं। हाल ही में जो चीज़ें आप लिख रहे हैं वे काफ़ी सुन्दर होती हैं।

'महापुरुष' आपकी एक सुन्दर व्यङ्ग्यपूर्ण रचना है।

महापुरुष

कचहरी में बैठा हूँ—नाज़िरात में। ऐसा ही कुछ काम आ गया है। यों काम चाहे न भी लगे, पर कभी-कभी जब मैं ऐसे काम में खुद लग जाता हूँ, तो चारा क्या है ? जीवन में तृष्णा है और तृष्णा में द्वन्द्व। और फिर द्वन्द्व ही जीवन है। महाचक्र के इस आवर्त्तन में मैं क्या हूँ, कौन हूँ, जो कचहरी से भागता रहूँ, बचता रहूँ और घृणा से विवर्ण हो-होकर व्यर्थ ही में अपने मन प्राण को आम्लान करता रहूँ। द्वन्द्व से भागकर, कर्तव्य-पराङ्मुख होकर, मनुष्य जायगा कहाँ ? हाँ, तृष्णा से भाग सकता है वह। किन्तु क्षण भर के लिए। क्योंकि, अचिर भविष्य में, मनस्ताप से आप ही जल-जलकर, एक बार फिर जब वह फूत्कार कर उठता है, तो सुहासिनी तृष्णा की कोमल गोद ही उस महोल्लास का पावन जीवन देती है।

हाँ, तो मैंने कहा न मैं नाज़िरात में बैठा हूँ। कुछ सोच रहा हूँ और देख रहा हूँ। सोच सोचकर देखता हूँ और देख देखकर सोचता हूँ। विविध प्रकार के चित्र सामने आ जा रहे हैं।

एक वकील साहिब पैंट में हाथ डाले हुए जा रहे हैं। गति उनकी मन्द है। कोट की बाहरी जेब में मोड़कर रक्खा हुआ चश्मा झलक रहा है। साइकिल पर आये हैं और पैंट के निम्न भाग को मोड़कर जो क्लिप लगाया जाता है, वह अभी तक ज्यों का त्यों लगा हुआ है। उस ओर वकील साहिब का ध्यान नहीं गया है। ध्यान जाये भी क्यों ? उसकी ज़रूरत ? सिर के बाल सफ़ेद हो गये हैं। पूरे तो नहीं, अधिकांश। लेकिन इससे क्या, बालों की सफेदी कोई चीज़ नहीं होती। दिल जिसका उज्ज्वल है क्या उसके बाल कभी सफ़ेद हो सकते हैं ? हो भी जायँ, तो उनका मूल्य क्या ? शरीर की वृद्धता हमारा करेगी क्या ? असल चीज़ मन है। और वकील साहिब ने जेब में हाथ डालकर देखा, नोट कहीं ग़ायब तो नहीं हो गये। तभी उन्हें निकाल कर गिनने लगे एक दो, तीन ठीक तो है। दस-दस रुपये के तीन नोट हैं और सुरक्षित हैं। फिर दूसरे हाथ से बाहरी जेब में से चश्मा निकालना चाहा। ज़रा सा ऊपर को उठाया भी, किन्तु फिर जहाँ का तहाँ रख दिया और बढ़ चले। किन्तु आगे चलकर फिर लौट पड़े। शायद कोई चीज़ भूल गये हैं।

इसी क्षण एक दूसरे साहब दीख पड़े। खसखसी दाढ़ी है आपकी। बाल अभी सफेद नहीं हुए हैं। लेकिन इच्छा उनकी ऐसी ही जान पड़ती है। गौर वर्ण है। सिर पर गोल, सफेद मारकीन की टोपी है। पायजामा कुछ ऊँचा, पैरों के

गर्द-गुबार से सर्वथा निश्चिन्त। हाथी-कान का पुराने ढब का जूता पहने हुए हैं। शरीर अचकन से चिपका हुआ है, या अचकन ही शरीर से चिपक गई है, कौन जाने? इस विषय पर मैं बहस नहीं करना चाहता। आप चाहे जो समझ लें, मुझे आपत्ति नहीं। हाँ तो मैं आगे बढ़ता हूँ। बाईं ओर एक दुलाई बग़ल से दबाये हुए हैं और उसके नीचे चारख़ाने का एक डस्टर लटक रहा है। दायें हाथ में टोंटीदार एक लोटा भी है। प्रतीत होता है कि आप इसी वक़्त देहात से चले आ रहे हैं।

मैं बाहर आ गया था। जाड़े की धूप खड़ी-खड़ी खिलखिला रही थी।

उन्होंने तपाक से आदाब अर्ज़ किया, तो अपरिचय के कारण मैं क्षण भर उन्हें देखता रह गया। उत्तर में मैंने 'तसलीम अर्ज' तो किया लेकिन ज़रा सा ठहर कर।

वे बोले—क्यों भाई जान, बाबू चन्द्रप्रकाश साहब वकील किधर तशरीफ रखते हैं?

मैंने कहा—जान पड़ता है कचहरी में आप शायद पहली ही बार आये हैं।

'जी, आप बहुत बजा फ़रमाते हैं। मैं तो कम्बख्ती का मारा आ भी गया, मगर क़सम कुरान की, जो इसमें एक हरफ भी झूठ हो—मेरे पुरखा तो इस से कोसों दूर रहा करते थे।'

'यह तो नाज़िरात है, मुन्शी जी। यहाँ वकील लोग नहीं बैठते। वे लोग अधिकांश या तो पच्छिम की ओर बैठते हैं, वहाँ उनके अलग-अलग कमरे भी हैं। या फिर उस चौरासी गजे वाली धर्मशाला में जिधर से आप आ रहे हैं।

'अच्छा, तो आप को जो तकलीफ दी, उसके लिए माफ़ कीजियेगा। हुजूर का दौलतखाना ?'

'मैं ! मैं तो परदेसी आदमी हूँ, यहाँ ऐसे ही आ गया। (इस) ग़रीब का घर कानपुर जिले में है।'

'तभी। तभी तो मुझे ताज्जुब हो रहा था कि ऐसी सुलझी हुई ज़बान यहाँ इलाहाबाद में कहाँ से आयेगी ! अच्छा, इजाज़त चाहता हूँ—आदाबर्ज़।'

वे चले गये।

चले तो गये, लेकिन आगे बढ़कर, जो साहब उनके सामने आये, उनसे भी उन्होंने यही प्रश्न किया—क्यों भाई जान, बाबू चन्दरपरकाश वकील............?

'मैं बाबू चन्दरपरकाश का मुहर्रिर हूँ कि मुअक्किल, जो उनके पीछे पीछे घूमता होऊँ।

ऊपर से नीचे तक अंगरेज़ी वेष-भूषा में आवृत हैं। सरदी में सताये हुए कभी-कभी सी-सी करने लगते हैं। हवा जो चल रही है। हाथ पर हाथ रगड़ रहे हैं। मुन्शी जी के प्रश्न पर ज़रा देर ठहरे और फिर चल दिये और खीज उठे। बोले—

अजीब देहाती आदमी मिल जाते हैं !

ये साहिब एक वैरिस्टर हैं। अपने एक मित्र से पूछकर मैं अभी जान सका हूँ। कर्कश बहुत हैं आप, प्रायः कहा करते हैं—दुनिया में जितने भी महापुरुष हुए हैं, सब इसी तरह के थे। लोग बात करना तो दूर रहा, उनके सामने होकर निकलने से भी कांपते हैं। आतङ्क वह चीज़ है कि मोची को मंत्री तक बना सकता है।

मेरा काम हो चुका है। बस, मुझे किसी तरह यहाँ चार बजा देने हैं। और अपने मित्र राजेश्वर के साथ चला जाना है। इसी नाज़िरात में वह क्लर्क है। मैंने सोचा—ज़रा सा घूम ही लूँ। ऐसा सजीव बायस्कोप भला और कहाँ देखने को मिलेगा !

एक-एक करके कई इजलासों में घूम आया। कहीं कोई परिचित व्यक्ति नहीं देख पड़ा। न मुन्शी जी ही देख पड़े, न वे वकील साहब—न वे भावी महापुरुष। और मैं सोचता यही हूँ कि इन्हीं लोगों में से कोई मिल जाता तो अच्छा होता। वकील साहब को केवल थोड़ी देर देखना चाहता हूँ वैरिस्टर साहब से उलझ पड़ने को मन है, और मुन्शी जी से मिलकर उनकी बातें सुनने की लालसा है।

एक ओर पीपल के पेड़-तले धूप से लिपटा हुआ मैं चुपचाप खड़ा हुआ था कि राजेश्वर ने आफ़िस से बाहर आकर कहा—चलो तुमको घुमा लायें। यहाँ खड़े-खड़े अकेले में

तुम्हारा जी ऊब रहा होगा......अरे सुनो महाराज, कोई ताज़ी गरम चीज़ भी बनाई है ?

'समोसे बन रहे हैं। पाव भर ले आऊँ ?'

'और कोई मीठी चीज़ ?'

'बरफी बहुत बढ़िया है।'

'दोनों आध-आध पाव। लेकिन यहाँ मत लाना । कोई ...... । चलो वहीं चलें। तीन बज गया। भूख जग उठी है। काम में तबीयत नहीं लग रही थी।' कहते हुए मेरे कन्धे पर हाथ रखकर राजेश्वर चल दिया। हम लोग अभी महाराज के पास पहुँच भी न पाये थे कि दिखलाई पड़े मुन्शी जी । राजेश्वर का साथ छोड़कर मैं तुरन्त उधर बढ़ गया । राजेश्वर पूछता ही रह गया—अरे कहाँ जाते हो? कुछ खाये तो जाओ। लेकिन मुझे तो इस समय दूसरी ही खुराक चाहिये थी।

निकट पहुँचते ही मैंने पूछा—कहिए, भेंट हुई ?

कहाँ हो सकी ! वे अपने अपने स्थान पर भी नहीं मिले। यहीं कहीं होंगे—उनके मुन्शी जी कह रहे हैं।

'उनको आप पहचानते हैं ?'

'यही तो मुसीबत है।'

'तो उनके मुन्शी से क्यों नहीं कहा कि उनसे मिला दें।'

'कहना चाहता था, लेकिन कहता कैसे ? हो सकता है कि इस के लिये भी वह कोई सवाल कर बैठता। आप को तो

आप को तो मालूम ही है कि यहाँ बिना पैसे के कोई काम नहीं होता।'

'लेकिन यह तो उसी का फ़र्ज़ था। इसमें पैसे की कौन बात थी?'

'फ़र्ज़ क्या चीज़ है और किस वक़्त पर, किस ओर से वह शुरू हुआ करता है, इसका फैसला भी तो यही लोग, सुना है, कि अपने आप कर लिया करते हैं।'

'चलिए, मैं आप के संग चलता हूँ। उनके मुन्शी को एक ऐसी डपट बताता हूँ कि वह भी याद करे। यह भी नहीं सोचा कि जिनसे काम निकलता है, उनकी सुगमता की ओर भी तो ज़रा ध्यान देना होता है!'

मैं मुन्शी जी के साथ चल दिया।

चलते-चलते मैंने पूछा—आप किस काम से आये हैं?

एक रुक्के की नालिश करनी है। रुपये की अवधि पूरी हुई जाती है। दोस्तों ने कहा—डिग्री करवा लो। पीछे वसूल होने का मौक़ा तो रहेगा।'

'आसामी की हैसियत क्या है?' मैं ने पूछा।

'हैसियत की बात न पूछिए। एक जोड़ी बैल की खेती करता है। जिस वक्त रुपया दिया था, काफी खुशहाल था। अब वह बात तो नहीं रही, लेकिन देना चाहता, तो थोड़ा थोड़ा करके भी दे सकता था।' वे बोले।

'कभी आपने तगादा भी किया?'

'तगादा ! तगादा करना मैंने उचित नहीं समझा । बहुत सीधा आदमी है । 'चचा-चचा कहते उसकी ज़बान से फूल झड़ते हैं ।

मैं चुप रह गया 'तगादा उन्होंने कभी किया नहीं। आदमी भी वह बहुत सीधा है, और देना चाहता तो थोड़ा-थोड़ा करके दे भी सकता था। आखिर इसका मतलब क्या है ।' सोचते हुए मैंने उनकी ओर देखा। बड़े परेशान नज़र आ रहे थे। मुद्रा पर उद्दाम अनुशोचन स्पष्ट झलक रहा था । बोले—मेरा मतलब उसे परेशान करना नहीं है। मैं तो केवल क़ायदे की कारवाई करने चला आया हूँ। मुझे डिग्री इजरा नहीं करनी है । लेकिन मनुष्य का जीवन तो केवल फ़र्ज को लेकर ही है न ? आप ने मेरा मतलब समझा कि नहीं ?

अब हम लोग बाबू चन्द्रपरकाश के कमरे में थे । मुन्शी बोला—बाबू साहब आते ही होंगे। आप नाहक़ परेशान हो रहे हैं। तशरीफ़ रखिये।

वे ज़मीन से बिछे हुए टाट पर बैठ गये।

मैंने देखा, दुलाई और लोटा एक जगह कोने में बदस्तूर रक्खा है, तो पूछ दिया—आप खाना खा चुके कि नहीं ?

'खाना तो आजकल शाम को ही मिलता है, क्योंकि रमजान के दिन हैं।' कहते हुए यकायक उनके मुखपर सात्विक दृढ़ता का अकृत्रिम उल्लास मुखरित हो उठा। अब मैंने सोचा राजेश्वर क्या कहता होगा।

और तब—

राजेश्वर ? वह भूखा है, क्योंकि उसने नौ बजे खाना खाया है और क्योंकि समोसे ताजे बन रहे हैं।

और मुन्शी जी देहात से दस मील पैदल आये हैं। और उनके भूखे मुख पर रमज़ान का मृदुल प्यार आलोकित हो रहा है।

मुहर्रिर से कहा—

'क्यों मुन्शी जी, इसी तरह से आप अपने वकील साहब के साथ अपना कर्तव्य पूरा करते हैं। ये वकील साहब से मिलने के लिये कितने उत्सुक हैं, आपको कदाचित इसका ज्ञान भी हो चुका है। इनका काम आवश्यक भी हो सकता है, यह भी आप सोच सकते हैं, तो भी आप इनको तुरन्त उनसे मिला देने की ज़रूरत नहीं समझते। क्यों ?'

तुरन्त उत्तर मिला—

'मैं एक और ज़रूरी काम में लगा हुआ था।......चलिये आप मेरे साथ चले चलिये।' उधर से वकील साहब आ रहे थे। बहुत परेशान से दीख पड़े। मुख पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। अपने मुन्शी को देखते ही बोले—वे तीनों नोट मालूम नहीं कहाँ गिर पड़े।

'नोट गिर पड़े।' चकित मुद्रा से मुन्शी बोला।

'क्या फरमाया आपने ? नोट गिर पड़े। कितने के नोट थे। कब, कहाँ गिर पड़े ?' मौलाना ने पूछ दिया।

वकील साहब अप्रतिभ तो थे, किन्तु मौलाना के प्रश्न पर 'किस वक़्त, कहाँ गिर पड़े' उनके होठों पर क्षणिक हास उदय होकर अस्त हो गया। नोट कहाँ गिर पड़े हैं, यह भी क्या उनके ज्ञान की बात है ?

खैर साहब हम सब वकील साहब के कमरे में आकर बैठ गये।

मुन्शी बोला—बतलाइए, कहाँ खोजूं ?

वकील साहब बोले—खोजने की ज़रूरत नहीं है। सुबह से ही मुझे डर लग रहा था कहीं गिर न पड़ें। वही बात हुई। उसी जेब में और भी कई कागज़ात थे। कई बार उनको निकालने की ज़रूरत पड़ी थी। किसी वक्त वे नोट भी साथ ही निकल कर गिर पड़े होंगे। अब क्या हो सकता है जो चीज़ जाने वाली है उसके जाने का आश्चर्य क्या ? (मुन्शी से बोले) जाओ, मैं चैक देता हूँ। बैंक से रुपया ले आओ।

'लेकिन अब तो सवा तीन हो रहा है !' मुन्शी बोला। 'तो त्रिवेणी बाबू की नालिश आज भी रह गई।' कहते हुए उनकी फ़ायल देखने लगे।

मैंने कहा—ये मौलाना बड़ी देर से आप को खोज रहे थे। देहात से आये हैं। इनको आप से ज़रूरी काम है। उचित होगा, आप इनकी बात भी सुन लें।

'मेरा काम ऐसा नहीं है कि उसे आज ही कर डालने की ज़रूरत हो। आप इतमीनान से अपने कागज़ात देख लीजिये।

यों ही मुझे वापिस नहीं जाना है। मकान पर सारा मामला समझा दूँगा। यहाँ आप को परेशानी भी हो सकती है।' कहकर संकेत से मौलाना मुझे लेकर बाहर आ गये।

हम लोग फिर बाहर धूप में आकर खड़े हो गये।

मौलाना बोले—मुझे कुछ शक हो रहा है। कहिए कहूँ, कहिए न कहूँ ?

'कहिए, कहिए ! न कहने की बात हो, तो भी तबीयत हो तो कह डालिए।' मैंने कहा।

'एक साहब से मैंने इन वकील साहब का पता पूछा था। वे ज़रा बिगड़े दिल थे, बड़बड़ा उठे। मैं उनकी शक्ल देखता रह गया। उसके बाद इन वकील साहब को खोजने के सिलसिले में मैं जो इधर-उधर घूमता फिरा, तो वे साहब एक जगह पड़े हुए कुछ काग़ज़ात उठाते हुए दीख पड़े। मैंने समझा—उनके होंगे लेकिन......।'

इसी 'लेकिन' के साथ उनका वक्तव्य स्थिर होकर रह गया। मैं उस समय उनसे कुछ कह नहीं सका। सन्देह अन्ततः सन्देह ही है। उसका अस्तित्व क्या ? बहुतेरी निराधार बातें मानस पर आ-आकर तैरती रहती हैं। क्षण-क्षण पर हमारे भीतर अनेक प्रश्नोत्तर उत्थित-विनष्ट होते रहते हैं। मैं कैसे कहूँ कि बैरिस्टर ऐसा काम कर सकता है !

उसी क्षण राजेश्वर ने देख लिया। दूर से ही बोला—विचित्र सनकी आदमी हो। मैं बुलाता ही रह गया और

तुमने ध्यान नहीं दिया। महाराज के यहाँ भी मैंने इन्तज़ार किया—लेकिन तुम बेकार यहाँ खड़े-खड़े मौलाना का वक़्त ख़राब कर रहे हो। यहाँ आये ही थे, तो कोई फ़ौजदारी का मामला देखते कहानी के लिये कोई चीज़ ही मिलती। लेकिन तुम ठहरे एक नम्बर के चुग़द !……आओ, चलो इधर। मौलाना साहब क्षमा कीजिएगा।

बाँह में हाथ डाल कर राजेश्वर ने मुझे अपने साथ कर लिया। मैंने और उपाय न देखकर मौलाना से कह दिया—आप वकील साहब के यहाँ तशरीफ़ रक्खें। मैं अभी आता हूँ।

राजेश्वर बोला यानी इन मौलाना को तुमने क्यों फाँस रक्खा है ? इनसे तुम्हारी कब की दोस्ती है ? कभी इनके घर भी गये हो, ये मुझे नहीं जानते, लेकिन मैं इनसे परिचित हूँ।

'मनुष्य की कुछ इज्जत करना सीखो' मैंने जलकर कहा।

'ओह ! यह कहो कि बिहारी बाबू न होकर तुम कोई महात्मा हो—देवता ! सातवें आकाश से बोल रहे हो ! अरे ज़मीन पर चलो, मियाँ, ज़मीन पर।'

'अच्छा तो मुझे जाने दो। मैं इस तरह……मुझे यह तरीका……तुम्हें शर्म आनी चाहिए।'

उसे बरबस छोड़ कर मैं भागने लगा, तो वह एकदम से प्रतिहत होकर बोल उठा—

'माफ़ करो! बिहारी बाबू !'

क्षण भर तक हम दोनों मौन रहे।

राजेश्वर बोला—तुम नहीं जानते, मैं तुम्हारी कितनी इज्जत करता हूं। लेकिन मैं करूं क्या, मैं अगर इस तरह से न रहूं, तो यह क्लर्की मेरा प्राण लेकर दम ले। तुम जानते हो, आदमी मशीन तो नहीं बन सकता।

मैं अब भी चुप रहा।

'कुछ खा लो तो मैं निश्चित होकर अपने काम में लगूं। मेरे साथ ही खाया था। मैं खा भी चुका, और तुम……तुमको भूख लगी होगी।' वह बोला।

'अच्छा, मैं ज़रा मौलाना से मिल आऊं। अभी आता हूँ। खाना तो अब मैं तुम्हारे घर पर ही खाऊँगा। तुम ठीक चार बजे तो मेरे साथ चल दोगे न।'

'चार बजे! चार बजे तो नाजिर जी भी नहीं उठते। अच्छा, आज उनसे कहकर कुछ पहले ही चला चलूँगा।'

मैं मौलाना के पास चल दिया। वे अभी तक वहीं खड़े-खड़े मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं जो उनके निकट पहुँचा तो वे बोले—अब मैं लौट जाना चाहता हूँ, पण्डित जी। मैं नाहक आया। रुपया वसूल हो, चाहे न हो। मैं उस आसामी पर नालिश नहीं कर सकता। वह जब मुझ से चचा कहकर बात करेगा, तो उसके सामने मेरी आँखें लच जायँगी। थोड़े से रुपये के लिये मैं अपनी ही नजरों से गिरना नहीं चाहता। और रुपया भी मेरा ख़याल है, अगर मैं तगादा करूँ तो वह दे देगा। उन्होंने इन शब्दों के साथ अपना हाथ बढ़ा

दिया। फिर हाथ मिलाते हुए वे बोले—आप से मिलकर खुशी हुई। क्या आप कभी मेरे ग़रीब खाने पर आ सकते हैं ? मैं उनकी ज्योतिर्मयी मुद्रा को ही देखता रह गया। कुछ कह नहीं सका। वे बोले—आप जैसा कोई भी आदमी मेरी नज़रों से अभी तक नहीं गुज़रा था और मैं तो कभी ख़याल में भी न ला सकता था कि ऐसी जगह में आप जैसे लोग भी मिल सकते हैं।

अब मुझ से चुप नहीं रहा जा सका। मैंने कहा—मैं नहीं जानता, किस तरह आपको धन्यवाद दूँ ?

मौलाना से विदा लेकर फिर मैं फौज़दारी अदालत की ओर जा निकला। बराण्डे में खड़े-खड़े वही बैरिस्टर साहब अपने किसी साथी से कह रहे थे—उल्लू हो तुम !—चान्स खोते हो। चान्स खोने वाला आदमी कभी उन्नति नहीं कर सकता। तुमको यह सुनके आश्चर्य होगा कि आज एक मिनट में मैंने तीस रुपये पैदा किये।

श्रीमती शिवरानीदेवी

स्व० प्रेमचन्द की धर्मपत्नी श्रीमती शिवरानीदेवी जी के नाम से जब हिन्दी की पत्र पत्रिकाओं में सुन्दर कहानियां निकलने लगीं तो बहुत लोगों को संदेह हुआ था कि स्वयं स्व० प्रेमचन्द ही आप लिख कर अपनी पत्नी के नाम से कहानियां छपवाते हैं। किन्तु उनकी यह धारणा कितनी भ्रम-पूर्ण थी यह इस बात से सिद्ध होता है कि प्रेमचन्द के निधन के बाद आज भी श्रीमती शिवरानी देवी बराबर कहानियां लिख रही हैं।

देवी जी ने अपने स्वामी की कृतियों को पढ़ पढ़ कर अपने हृदय में कहानी लिखने की एक प्रबल प्रेरणा पाई । देर तक आप अपने पति को बिना बताए कहानियां लिख कर फाड़ती रहीं । पर सुगन्धि छिपाए से कब छिप सकती है। अन्त में उन्हें पता लग गया । पहले पहले की कहानियों को स्व० प्रेमचन्द ने देखा । पर बाद को समयाभाव के कारण वे ऐसा न कर सके और श्रीमती शिवरानी देवी स्वयं ही अपनी पथ-प्रदर्शक बन गईं।

कहानी के उद्देश्य के सम्बन्ध में उनके विचार अपने स्व० पति से मिलते हैं।

आपके दो कहानी संग्रह 'नारी-हृदय' और 'कौमुदी' 'सरस्वती प्रेस' काशी से प्रकाशित हो चुके हैं।

'विमाता' आपकी सुन्दर रचना है।

विमाता

मुन्शी रमाकान्त की स्त्री का जब देहान्त हुआ तो मुन्शी जी का पुत्र सोहन पन्द्रह साल का था। घर में मुन्शी जी की माँ थीं। वही सब काम करती थीं। और मुन्शी जी की स्त्री के मरने की देर थी कि व्याह के लिए न्योते आने लगे।

मुन्शी जी ने यह प्रस्ताव अपनी माँ से कहा। माँ दुनिया देख चुकी थी, बोली—बेटा, मेरी राय पूछते हो, तो मैं यही कहूँगी कि तुम अब इन रोगों में न पड़ो। क्योंकि तुम्हारे अब एक लड़का है। तुमको अब सिर्फ़ अपना ही ध्यान नहीं रखना है, बल्कि सोहन का भी। और फिर आमदनी का यह हाल है—मुश्किल से रो-धोकर महीना बीतता है। अगर तुमको घर ही बसाने की फिक्र है, तो दो-चार साल में सोहन ही का व्याह करके घर बसा लेना।

मुन्शी जी बोले—अम्माँ, तुम्हीं सोचो, मुझे कोई पानी देने को चाहिए कि नहीं? आज तो तुम हो, लेकिन कल को

कोई एक रोटी भी देने वाला तो नहीं है। फिर लड़के के लिए भी माँ की ज़रूरत है ही, नहीं तो मान लो तुम मर गईं तो बहू को कौन सँभालेगा, कौन देख भाल करेगा ? फिर मैं ही बीमार-ईमार हो जाऊँ तो सेवा-बर्दाश्त कौन करेगा ?

माँ बोली—बेटा, जैसा मुझे पसन्द था मैंने कह दिया—फिर जैसी तुम्हारी इच्छा।

मुन्शी जी माँ से बोले—सब कहते हैं कि वह घर के काम-काज में बड़ी कुशल है और बच्चों से उसको बड़ा प्रेम है। लोगों का तो कहना है कि पैसे का काम पाई में करने वाली है।

माँ—तो फिर ठीक है। इसी तरह की बहू की तो ज़रूरत है जो सोहन को आराम से रखे और अपना घर देखे। और क्या चाहिए बेटा ! सोहन का नाम लेते ही लेते माँ रो दीं। हाय ! वह देवी मरने योग्य थी ? सब भगवान की मरज़ी है।

मुन्शी जी बाहर चले गये।

(२)

कुछ समय बाद उनका ब्याह हो गया। नई बहू आ गई। वह घर के कामों में कुशल थी। पैसे का काम पाई में होने लगा। माँ खामोश थी, बहू बड़ी अच्छी है। मुन्शी जी भी नई बहू को बहुत प्यार करते थे। गृहिणी की चातुरी देख मुन्शी जी अपने मित्रों में उसकी प्रशंसा के पुल बाँधते थे। पहले रुपये-पैसे माँ के हाथ में रहते थे तो सोहन को आराम था।

दो-एक बार नई बहू रम्भा देवी ने इशारे से कहा—अम्मा, जब तुम्हीं घर-गृहस्थी सँभाल सकती थीं, तो फिर मुझे ब्याह कर लाने की क्या ज़रूरत थी ?

माँ, झांपकर बोली—बेटी, बड़ी खुशी की बात है। तुम्हीं अब घर देख लोगी तो मुझे भी छुट्टी मिल जायेगी।

माँ चाभी रम्भा को देकर मुक्त हो गई।

रम्भा देवी सोहन को फूटी आँखों नहीं देख सकती थीं। सोहन बाहर से आया तो बोला—चाची, मुझे पाँच रुपये दे दो, मैं किताब लेने चौक जाता हूँ।

रम्भा आँखें फैलाकर बोली—अभी रुपये नहीं हैं।

सोहन बोला—तुम कहती हो रुपये नहीं हैं, और अब मेरे इम्तहान में कुल पन्द्रह दिन और हैं। मेरी समझ में नहीं आता, इम्तहान सिर पर, किताब का कहीं पता नहीं।

रम्भा—किसी से माँगकर क्यों नहीं पढ़ता ? सोहन को गुस्सा आ गया, बोला—जब बाप के पैसा नहीं निकलता तो दूसरे क्यों देने लगे ?

रम्भा क्रोध से बोली—ठीक ही है। जब तेरा बाप ही मर गया तो मैं किसकी कमाई दूँगी। आज आने दो तो कहती हूँ कि तुम्हारा लाड़ला कहता है कि मेरा बाप तो मर गया।

सोहन उसको रोककर बोला—क्यों व्यर्थ मेरे ऊपर तोहमत कसती हो ? मैंने मरने-जीने का तो नाम तक नहीं लिया।

रम्भा—चुप हो, नहीं तो कहे देती हूँ। झूठा कहीं का, मक्कार! मेरे ही मुँह पर कहता है और मुझे ही झूठी बनाता है।

सोहन आँखों में आँसू भरकर बाहर चला गया।

शाम को जब मुंशी जी आये, तो रम्भा खाट पर लेटी हुई थी। मुन्शी जी ने जल्दी से कपड़े बदले और रम्भा के पास जाकर बोले–कैसी तबीयत है ?

रम्भा बोली—तबीयत को क्या हुआ है ? मुझसे मौत भी डरती है, क्योंकि मैं अभागिनी हूँ न ! यही घर भाग्य में था जहां रात-दिन किच-किच होती रहती है !

मुंशी जी हँसकर बोले—रम्भा, तू बड़ी पागल है। तेरा ब्याह मुझ से हुआ कि घर से ? अगर सोहन ने कुछ कहा है, तो बतला, अब मैं उसका ज़िम्मेदार नहीं। अब वह भी जवान हो गया।

रम्भा बोली—तुम्हीं को तो कहता था कि मेरा बाप मर गया, और न जाने क्या-क्या बकता था। मैंने मना किया कि क्यों उनको कोसते हो, तो मारने दौड़ा। और कहता है कि तुम दोनों का मुँह देखना पाप है।

मुन्शी जी—किस लिए लड़ता था, और कहाँ गया ?

रम्भा--लड़ता था कि बीस रुपये दे दो। मैंने कहा कि तनख्वाह मिलेगी, कल दूँगी, आज मेरे पास बीस रुपये नहीं है। तब तुम्हारा नाम लेकर कहने लगा कि अब समझ लूँ कि

मर गये ? उसी पर मैंने मना किया कि रुपये के लिये मत कोसो, दिन-घड़ी कैसी लगी है। उसी पर मुझे मारने उठा था।

मुन्शी जी—है कहाँ ?

रम्भा—है कहाँ, मैं क्या जानूँ ? तुम्हारी माँ पण्डित जी के घर मिलने गई हैं, उन्हीं के पास गया होगा। अभी वह भी फ़ौज लेकर आयेंगी।

मुन्शी जी—अच्छा तो अम्मा भी शह देती हैं।

रम्भा—तब क्या तुम समझते थे वह अच्छी बातें बतलायेंगी। वह तो और भी फूटी आँखों नहीं देख सकतीं।

मुन्शी जी—मेरी समझ में नहीं आता, मैंने इन लोगों का क्या बिगाड़ा है।

रम्भा—कुछ नहीं, मैं ही काँटा हूँ, किन्तु इसमें मेरा क्या बस ! तुम्हें चाहिए था कि सब की राय से ब्याह करते। जब मैं गहने और कपड़े पहनती हूँ, अम्मा जी रोती ज़रूर हैं। मैंने क्या सोहन की माँ को मार डाला है ? फिर जब मैंने सोहन के बाप ही को ले लिया तो फिर गहने और कपड़े की बात ही क्या।

मुन्शी जी—तब सोहन का क्या बिगड़ता है ?

रम्भा—क्यों नहीं बिगड़ता है ? सब से कहता तो फिरता है। रोता घर-घर है।

मुन्शी जी—ऐसा ही चाल-चलन है तो अभी क्या रोता है, अभी और रोएगा।

किसी ने मुन्शी जी को बाहर से आवाज़ दी और वह बाहर चले गये।

(३)

सोहन अपनी दादी के पास बैठा था।

बाहर से मुन्शी जी ने गुहार लगाई सोहन यहाँ आ, आज कल तेरा मिज़ाज़ बहुत बिगड़ गया है तो तेरे लिए घर में जगह नहीं। अब तू भी जवान हुआ, कमा-खा।

बूढ़ी माँ रोकर बोली—क्यों तुम दोनों रात-दिन बेचारे का दिल दुखाया करते हो? उसने क्या किया है बेटा?

मुन्शी जी आपे से बाहर होकर बोले—चुप रहो। तुम्हीं ने उसको सिर चढ़ा रक्खा है।

बूढ़ी माँ को भी तैश आ गया, बोली—मैंने क्या सिर चढ़ा रखा है? हाँ, अनर्थ नहीं देखा जाता। मैं कहती हूँ, क्या उसकी माँ मर गई तो उसके प्राण ही लेकर छोड़ोगे?

मुन्शी जी—उसके प्राण कौन ले सकता है। मैंने उसकी जिन्दगी भर का ठेका तो नहीं ले लिया है। हाथ-पैर वाला हुआ, कमाता-खाता क्यों नहीं? मेरे और भी तो बच्चे हैं—क्या सिर्फ़ उसी को पालना है? अब वह मेरे घर में नहीं रह सकता।

बूढ़ी माँ—खैर, जैसी तुम्हारी मरज़ी। मुझे क्या करना

है। मैं भी तो गाँव जाना चाहती हूँ, तब तुम्हें जैसा अच्छा लगे करना।

सुन्शी जी—मैं तुम्हें नहीं रोक सकता। तुम दोनों जाओ। तुम्हारे पीछे मैं अपना घर नहीं चौपट कर सकता।

बूढ़ी माँ—तो आज शाम की गाड़ी से मैं जाती हूँ। जैसा तुम्हें उचित दीखे, करना।

मुन्शी जी—शौक से। मैंने बहुत सहा, अब नहीं सहा जाता।

रम्भा आकर बोली—सब नख़रा है। जब घरवालों को भी यहाँ से खाने को जाता है तो रोटियाँ चलती हैं। जान पड़ता है कि घर में सब धन्ना-सेठ ही हैं।

बूढ़ी माँ ने कुछ उत्तर न दिया। रम्भा चुप हो गई।

मुन्शी जी रम्भा से बोले—भोजन तैयार है ? मुझे एक दोस्त से मिलने जाना है। बारह बजे का समय दिया था।

रम्भा बोली—चलिए, भोजन तैयार है। अभी तो बहुत समय है। दोनों चले गये।

तब बूढ़ी माँ को याद आई। सोहन को इधर-उधर देखा, कहीं दिखाई न दिया। सोचा, कहाँ चला गया ? आज रात को हम लोगों को चला ही जाना चाहिए। जिस घर में अपने को कोई न पूछता हो, उसमें रहना व्यर्थ है। फिर आज बेटे की बातों से मालूम हो गया कि जब वह अपने बेटे को निकाल सकता है, तो मेरी क्या हस्ती। फिर सोचती है कि मैं सोहन

को अगर लेकर चली जाऊँगी, तो उसका पढ़ना छूट जायगा। उसकी ज़िन्दगी चौपट हो जायगी। फिर बेचारी बुढ़िया सोचती है, क्यों न साल-दो-साल और बिता दूँ जिसमें सोहन को रोटी का सहारा हो जाय ? तब देखा जायगा। सोचते-सोचते बुढ़िया को रोना आ गया......

(४)

आज सोहन आठ दिन से गायब है। घर में सब लोग खुश हैं। रोता कौन है ? बूढ़ी दादी न खाती है, न पीती है और न किसी को मनाने की ही फुरसत है।

बूढ़ी माँ बेटे से रोकर बोली—तुमने सोहन को निकाल कर ही दम लिया। ठीक है, मुझे घर पहुँचा दो। मैं तुम्हारे घर में रहना अब पाप समझती हूँ।

मुन्शी जी बोले—जाना हो जाओ। लेकिन मैंने न सोहन को ही निकाला है और न तुम्हें ही निकालता हूँ। फिर सोहन लड़की तो है नहीं कि चला गया तो बदनामी होगी। अच्छा हुआ, अपना कमाये-खाये। इसको मैं बुरा नहीं मानता।

रम्भा आकर बोली—देखो अम्मा, रात-दिन का रोना अच्छा नहीं होता। ठीक से रहना हो तो रहो नहीं घर जाने को कह रही थीं तो जा सकती हो, कोई तुमको बाँधे तो है नहीं। आज तुमने मोहन को पीटा है। मैं तुम्हारे लिए बुरी हूँ न कि मोहन। मोहन भी तुम्हारा ही है। लेकिन मेरी दुश्मनी अगर बच्चे से निकालोगी तो बुरा होगा।

मुन्शी जी—इनका दिमाग़ ख़राब हो गया है। इनके लिए सबसे ठीक घर जाना ही है, और कोई दवा नहीं। यह रात-दिन सब का घर में रहना हराम कर देंगी।

रम्भा मुँह बिचका कर बोली—मेरी तो आपने मिट्टी ख़राब कर दी और क्या। और आँखों में झूठे आँसू भरकर चली गई।

मुन्शी जी रम्भा के साथ-साथ कमरे में जाकर बोले—रम्भा तुम क्यों रोती हो? तुम्हारा रोना देखकर मैं अपने को क़ाबू में नहीं रख सकता। प्रिये, मेरा ख़याल करके तुम खुश रहा करो।

रम्भा—खुश रहने में ही क्या मिलता है।

मुन्शी जी—सब दुनिया है जी। सब अपना-अपना ही रोना रोते रहते हैं।

मोहन बाहर से आकर पिता की गोद में चढ़ गया। मुन्शी जी उसको बाहर लेकर चले गये। बूढ़ी माँ घर चली गई। रम्भा की माँ और भाई आ गये। और घर में जो दो आदमियों की कमी हो गई थी वह पूरी हो गई।

अब मुन्शी जी और रम्भा दोनों खुश हैं।

मुन्शी जी बोले—घर रुपये भेजने हैं रम्भा, भैया का खत आया है खेती में कुछ हुआ नहीं, और एक बैल भी मर गया है। लिखा है कि रुपये के बिना घर में बड़ी तकलीफ़ है। इस लिये कुछ रुपये हों तो भेज दो।

रम्भा मुँह बनाकर बोली—क्या यहाँ डाल में रुपये फलते हैं, या चबैनी है कि सबको मुट्ठी-मुट्ठी भर बाँट दिया जाय ? सब के बाल-बच्चे हैं। हमारे क्या कोई खाने वाला नहीं है ?

मुन्शी जी बोले—भाई माँ को खिलाना मेरा फ़र्ज है।

रम्भा—तो माँ क्यों चली गई ?

मुन्शी जी हँसकर बोले—अजी तुम भी खूब हो। खैर, जो लिखा था तुमको बता दिया। अब जैसी तुम्हारी राय हो।

रम्भा—कुछ नहीं जायेगा। सभी के घर होता है। हाँ मैं तो भूल ही गई थी। सोनार के यहाँ से मेरा कड़ा नहीं आया। आज ही तो देने को कहा था।

मुन्शी जी—अजी, मुझे भी याद नहीं था। उसे १००) देने हैं ?

रम्भा बोली—मैं रुपये देती हूँ, आप जाकर लेते आवें, क्योंकि रमेश बाबू के घर कल मुण्डन है और मुझे भी बुलावा आया है।

मुन्शी जी—दो रुपये, मैं जाऊँ ला दूँ। नहीं कल तुम मुझी को दोष देने लग जाओगी।

रम्भा रुपये देते हुए बोली—अम्मा के लिए एक अच्छी सी साड़ी भी लेते आइयेगा क्योंकि इनको भी बुलाया है।

मुन्शी जी 'बहुत अच्छा' कहते हुए बाहर चले गये।

(५)

दादी के मरने की खबर पाकर सोहन कलकत्ते से आया

है। जब क्रिया-कर्म से छुट्टी मिली तो अपने चाचा से बोला—चाचा मैं रुपये देता हूँ, मेरे लिए मकान बनवाना है।

मुन्शी गंगाप्रसाद बोले—घर तो है ही, क्या होगा घर बनवाकर ? रहते क्यों नहीं ? और तुम्हें कलकत्ते में रहना है कि गाँव में ?

सोहन—फिर भी घर की ज़रूरत तो होती ही है।

मुन्शी गंगाप्रसाद—पहले अपना व्याह कर ले, फिर घर की फ़िक्र करना। भैया ने तो हम लोगों को छोड़ ही दिया, तुम्हीं को देखकर हमको भी धीरज है। और क्या बेटा, जब से तुम्हारी माँ मरी, सारा घर चौपट हो गया।

सोहन बोला—जब घर-द्वार हो जाये तो व्याह भी सोहाता है। मैं सोचता हूँ, कल पंडित जी को बुलाकर साइत पूछ लूँ, फिर देखा जायगा।

मुन्शी गंगाप्रसाद—भैया से पूछ लो, तुम्हारे बाप हैं। नहीं सुनेंगे तो बुरा मानेंगे कि हम से नहीं पूछा।

सोहन—इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। मैंने उनको उसी दिन समझ लिया जिस दिन उन्होंने मुझे घर से बाहर कर दिया और मेरे पीछे दादी को, जो उनकी माँ थी भगा दिया। वह सब कुछ अपनी स्त्री को ही समझते हैं, तो हमारी भी स्त्री आयेगी। हमें उनकी कुछ परवाह नहीं।

(६)

मुन्शी जी के मरने के बाद रम्भा गाँव में चली आई और

सोहन के चाचा के साथ रहने लगी। इसी बीच में छः महीने बीत गये और सब कुछ हो गया, रोना-धोना, झगड़ा-लड़ाई, सब कुछ।

एक दिन सोहन की चाची अपने पति से बोली—तुम मुझको मारने पर लगे हो जो इसको रख लिया है। फिर क्या मुझको वह कोई गठरी दे गये हैं? जब तक वह ज़िन्दा थे, उनको खाया और अब तुम्हें खाने पर लगी है। इसके लिए मेरे घर में रहने की जगह नहीं है। जैसे तुमने इस घर में रखा था, वैसे ही निकाल भी दो। मैं अपने घर में इसे नहीं रखना चाहती।

मुन्शी जी बोले—तू चुप हो। मैं इसको सोहन के गले बांधूंगा जो इसका बेटा है। मेरे ऊपर उनका कोई भी हक़ नहीं है। अभी तो मैंने इसलिए रख लिया है कि गाँव-घर के लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। फिर अभी जवान है। कोई कुछ बुरा-भला कर बैठे, तो वह तो मर गये, बदनामी तो हमीं लोगों की होगी। तू तो कुछ समझती है नहीं।

स्त्री बोली—मैं कुछ नहीं जानती। मुझे रात-दिन की किच-किच नहीं भाती। फिर इनको चाहिए, इनके बच्चों को चाहिए। आज उनके मोहन ने मेरे भान को बहुत पीटा। मेरी आँखों में खून उतर आया। लेकिन जब मैंने उस पर उलाहना दिया तो कहने लगी कि मेरे बच्चे को देखकर जलती

क्यों है ! मेरे पास कुछ भी न हो तब भी इनको दूध के कुल्ले करने को दूँ।

मुन्शी जी ने झगड़े का हाल सुन लिया था। चुपके से उठकर सोहन के मकान की राह ली।

जाकर सोहन से बोले—बेटा, मोहन की मां को अब तुम संभाल कर रखो। मेरा हाल तो तुम से छिपा नहीं है। मैं तुम्हारे बाप का भाई हूँ और तुम उनके लड़के हो। तुम्हारे ऊपर उनका हक़ भी है। छः महीने हो गये और तुमने एक पैसा भी न दिया और न खोज-खबर ली।

सोहन बोला—पैसा देना, ख़बर लेना मैं पाप समझता हूँ।

चाचा—फिर यही जवाब है ? वह तुम्हारी विमाता है। उसके बच्चे तुम्हारे भाई हैं कि नहीं, बहन है कि नहीं ?

सोहन—बाप मर गये हैं, माँ तो ज़िन्दा है। उसका कर्त्तव्य है बच्चों का पालन करना, मेरा नहीं।

चाचा—तो मुझे इसकी पंचायत करनी होगी कहीं कुछ भला-बुरा हुआ तो मुँह दिखाने योग्य न रहोगे। सोच लो अभी जवान स्त्री है। किसी के दिल का हाल कौन जाने।

सोहन—मैं इसके लिए कुछ नहीं कर सकता। मेरे लिए अपना ही परिवार सँभालना मुश्किल हो रहा है।

चाचा—तू कर्तव्यहीन है, बेशर्म है। तेरे सामने कुल-मर्यादा की भी कुछ क़ीमत नहीं। अपने स्वार्थ के ही कारण ऐसा कहता है।

सोहन—मुझे अपने बड़प्पन लेने के पीछे अपने बच्चों की हत्या करने का कोई हक़ नहीं। जो कुछ भी मेरे घर में है, वह मेरे अकेले का नहीं। उसमें मेरे बाल-बच्चों और स्त्री का भी हिस्सा है। अब मैं वह पहले का सोहन नहीं जिसकी अपनी हर एक चीज़ अपनी थी। अब मेरे ऊपर भी अपनी स्त्री और बच्चों की ज़िम्मेदारी है। मोहन की माँ को अपने घर में रखने के मानी यह हैं कि अपने बच्चों के मुँह का कौर छीन कर मैं अपने बाप के नाम खिला दूँ। और फिर जो बाप अपनी सन्तान के लिए त्याग नहीं कर सकता, उसके लिए बेटे के त्याग करने की कोई ज़रूरत मैं नहीं समझता। फिर तुम स्त्रियों को अपंग क्यों समझते हो। तुम उनके साथ अन्याय कर रहे हो, क्योंकि उनको अपने पैरों पर खड़ा होने का समय नहीं देते। उनको खुद ही अपने पति की इज़्ज़त का खयाल होगा, और हम से और तुम से ज़्यादा, क्योंकि पति के लिए सबसे प्रिय वस्तु स्त्री है। इसलिए वह भी उसकी इज़्ज़त को अपनी इज़्ज़त समझेगी, उसके कर्तव्य को अपना कर्तव्य समझेगी। अगर हम लोग उसका भार अपने सिर पर ले लेंगे, तो कहने को होगा कि जब तक जीवित था, तब तक तो उसकी थी और मर गया तो दूसरों की हो गई। नेक और स्वाभिमानिनी स्त्री इसको अपमान समझेगी, और यह है भी लज्जा की बात।

चाचा—अभी ऐसा कहते हो; कल को कुछ भला-बुरा हो

Excellent

गया तो पत्ते पर माँस बिछ जायगा। तब बोलने योग्य नहीं रहोगे। अभी बच्चे हो। ज़रा-सी अँग्रेज़ी पढ़ ली और विलायत के सपने देखने लगे। यह है हिन्दुस्तान !

सोहन—मेरी निगाह में स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समाज एक है। उनकी इच्छा हो किसी से ब्याह कर सकती हैं। मैं कभी इसको बुरा नहीं कहूँगा, बल्कि और खुश होऊँगा। यह तो स्त्रियों के साथ अन्याय है कि पुरुष तो बुड्ढा-खुर्राट होकर भी ब्याह कर सके और विधवा स्त्रियों को जो अभी युवती हैं समाज सती होने का उपदेश करे। पुरुषों ने अपने अधिकार जमाने के लिए उनके साथ अन्याय किया है। मैं इसे अच्छा नहीं समझता।

चाचा—तू इतना नीच स्वभाव का हो गया है कि तुझसे बात करना फ़िज़ूल है।

सोहन—तो मुझ से कुछ भी मत कहो। जैसा तुम्हें सूझे करो क्योंकि मेरे बाप के साथ तुम्हारा भी कुछ कर्तव्य है, कि सब मेरा ही है। और फिर जो मुझे पन्द्रह साल तक पाला, तो मेरे साथ कोई उपकार नहीं किया। उसको अदा करना तुम्हारा फ़र्ज़ है। मुझे तो पैदा किया था, न पालते तो सरकार गरदन नापती, लेकिन तुम्हारे लिए वहाँ भी गुंजाइश नहीं थी।

चचा ने जब देखा कि सोहन के सामने चलने वाली नहीं है बल्कि वह उन्हें ही उल्टा फँसाना चाहता है, तो सोहन से

बोले—ठीक है बेटा, मैं जाता हूँ।

सोहन बोला—मेरे कहने को बुरा न मानियेगा।

चचा—नहीं बेटा, बुरा क्यों मानने लगा। अभी तक मैं अपने को भाई से अलग समझता था लेकिन अब मालूम हुआ कि भाई हमसे अलग न थे।

सोहन—हाँ, मेरी माँ सगी माँ होती और उन्हें आप अलग कर देते, तो उसके लिए मैं ज़िम्मेदार भी हो सकता था, लेकिन इनके साथ तो दूसरी बात है।

(७)

रम्भा चुपके से जाकर सोहन की सब बातें सुनती थी। पहले तो उसके जी में आया कि सोहन का मुँह नोच ले कि उसका ही बाप तो उसे ब्याह कर लाया था।

वह उससे पूछना ही चाहती थी—तू मुझे क्यों नहीं रखेगा मेरे बच्चों को क्यों नहीं पालेगा? तेरे बच्चे हैं तो क्या ये पड़े हुए मिले हैं जो उन्हें नहीं पालेगा? फिर सोहन का कहना अपने आप दुहराया कि मेरी माँ होती, तो मैं ज़िम्मेदार था। उसका कहना ठीक ही है कि जब बाप बेटे के लिए त्याग नहीं कर सकता, तो बेटा बाप के लिये क्यों जान दे! वह अपने बीवी-बच्चों को छोड़कर अपने बाप के बीवी-बच्चों के लिए क्यों जान दे? इन सब बातों की सत्यता का अनुमान करते-करते उसकी आँखों में पश्चात्ताप के आँसू ढुलक पड़े। जो कुछ भी सोहन ने कहा था, वह उसको निर्विकार सत्य

प्रतीत हुआ। उसने फिर सोचा, जब मोहन के पिता घर रुपया भेजने के लिए कहते थे, तब तो मैं अड़ंगा लगा दिया करती थी। यहाँ तक कि अपनी माँ के पास भी वह रुपया न भेज पाये। तब इन सब कुकर्मों की गठरी सर पर लादे, मुझको सोहन और अपने जेठ की कमाई खाने का क्या हक़ हासिल है? मेरा इस घर में रहकर खाना ख़ैरात और भीख माँगकर खाने के बराबर है। जिस दिन यह लोग चाहें, मुझको धता वता सकते हैं। उसने सोहन या अपने जेठ के घर रोटी तोड़ने को एक उचित हक़ बनाने का केवल एक साधन पाया। उसने सोचा कि घर में वह महरी की तरह काम करे और खाना खाए। अगर उस पर भी यह लोग दे दें तो यह उनकी नेक-नीयती है क्योंकि भाभी जी भी तो काम करके ही खाना खाती हैं। उसको अपने ऊपर घृणा हो आई और उसके हृदय में एक बार आत्महत्या कर डालने तक का विचार आ गया। मैं अभी तक स्वामिनी बनना चाहती थी, लेकिन मैं उसके योग्य नहीं थी, और अपने योग्य ही कहारिन का पद पा रही हूँ।

उसने अपने-आप को औरों के मुक़ाबिले में आँका और परिणाम यह हुआ कि वह उन आदर्श देवी-देवताओं के सम्मुख एक हत्यारिनी—समाज की हत्यारिनी साबित हुई।

उसके हृदय की गति ऐसी हो रही थी कि उसका वर्णन करना इस तुच्छ लेखनी की सामर्थ्य के बाहर है। उसकी

इच्छा हो रही थी कि चुल्लू भर पानी में डूबकर अपना यह काला मुँह लोगों को न दिखाए।

उसने अपने कुकृत्यों के लिए ईश्वर से क्षमा माँगी।

(८)

रम्भा रात-दिन काम करती है, सबसे पहले उठती है और सबके बाद सोती है। जब सारा संसार निद्रा देवी की गोद में होता है, तब वह घर का काम किया करती है।

रम्भा ने अपनी जेठानी से कहा—भाभी जी, मैं आटा घर में पीस लिया करूँगी। बाहर पिसाई देने की ज़रूरत नहीं।

भाभी बोली—रम्भा तू क्या क्या कर लेगी? तू तो मुझे कुछ करने ही नहीं देती। तेरे ही मारे तो मैं दिन-पर-दिन काहिल होती जा रही हूँ। उस पर तू सोहन के घर का काम कर आती है। तुझे इतना काम नहीं करना चाहिए।

रम्भा हँसकर बोली—तुम चुप तो रहा करो ज़रा। मैं कोई छुई मुई तो हूँ नहीं जो थोड़ा-सा काम करने में मर जाऊँगी।

भाभी हँसकर प्रीति से बोली—मुझे तो तुमने छुई मुई बना दिया है। और रोज़-बरोज़ बनाती जाती हो। मेरा कैसे बीतेगा?

रम्भा—बीतने को क्या है। तुम मुझ से बड़ी भी तो बहुत हो, क्या अब भी तुम्हीं काम करती जाओगी। फिर मैं तो हूँ ही। मैं कहाँ जाती हूँ जो तुमको कष्ट होगा?

भाभी—रम्भा, तू क्यों इतना काम करती है? मैं डरती हूँ कि कहीं तू बीमार पड़ गई तो मैं मर जाऊँगी, क्योंकि मेरे किये तो अब कुछ होता नहीं।

रम्भा—बीमार क्यों पड़ जाऊँगी? कोई बूढ़ी थोड़े ही हूँ मेरी इच्छा तो होती है कि तुम्हारे पैर धो-धोकर पीऊँ। मेरे बड़े भाग्य थे जो तुम लोग मुझको मिलीं। मेरा जीवन सफल हो गया। पारस मणि का स्पर्श बड़ी साधना से हो पाता है।

भाभी—तू मुझको क्यों हरदम गाली दिया करती है? मैंने तेरे लिए क्या किया है? तू ने ही बल्कि मुझे मोल ले लिया है।

रम्भा दोनों हाथ से भाभी का मुँह बन्द करते हुए बोली—मुझ नीच की तारीफ़ों के पुल बाँधती हो? मैं तुम्हारी दासी भी होने योग्य नहीं हूँ। यह तो मैं अपने पूर्व कर्मों का प्रायश्चित कर रही हूँ।

भाभी बड़े प्यार से उसे गले लगाकर बोली—तू मेरी धर्म की बेटी है।

रम्भा भाभी की छाती पर सिर रखकर रोती हुई बोली—आज से मुझे तुम और दादा जी अपनी बेटी ही समझना।

भाभी गद्गद होकर बोली—मैं तो बेटी ही समझती हूँ, पगली!

बाहर से मुंशी जी ने आकर कहा—अच्छा, रम्भा अब बहू से बेटी हो गई है?

रम्भा अपनी लाज को छिपाने का विफल प्रयास करती हुई बोली—जी, बहू से बेटी बनने में मैं अधिक सुखी हूँ।

मुन्शी जी हँसकर रो दिये।

(६)

मुन्शी जी सोहन के घर जाकर बोले—बेटा सोहन, मेरी बात को न टालना। मैं तुम्हें अपने साथ रहने को कहने आया हूँ।

सोहन चाचा के पैर पर गिर कर बोला—मैं पहले से ही सोचता था कि सब लोग साथ-साथ रहें। लेकिन लज्जा-वश आपके सामने मेरी ज़बान न खुलती थी। अब मैं तैयार हूँ। धन्यवाद है आपको।

उसी दिन से सब लोग एक ही घर में हैं। अब भी गाँव में रम्भा की घर-घर चर्चा होती है। एक दूसरे के सामने वह आदर्श रूप में रखी जाती है।

रम्भा अपने लिए नहीं, बल्कि सब की सेवा के लिए है। रम्भा की सूरत पर—जो सोने और चाँदी और मूल्यवान कपड़ों से नहीं चमकती थी—अब रात-दिन की मेहनत, कष्ट और त्याग से कान्ति आ गई है।

वह अपने को सब की चेरी समझ कर सेवा करती है, किन्तु सब के हृदय की रानी है।

श्रीमती उषादेवी मित्रा

आपका जन्म जबलपुर के प्रसिद्ध रईस दत्तवंश में हुआ।

आपकी प्रतिभा वंशगत है। आपके पिता स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र दत्त साहित्य-सेवी थे। उन्होंने उर्दू और अंग्रेज़ी में कई पुस्तकें लिखी थीं। आपकी मातामही श्रीमती विनोदिनी देवी, अपने समय की अच्छी कवियित्री थीं।

मित्रा जी के पति श्री क्षितीशचन्द्र मित्र इंजीनियर थे। विधवा होने के बाद से आप जबलपुर ही में रहती हैं।

आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर आपके मामा ने आपको कलकत्ते ले जाकर संस्कृत और साहित्य की कई वर्षों तक शिक्षा दिलवाई।

आप ४, ५ वर्ष से ही हिन्दी में लिख रही हैं इसी बीच में आपने कोई सवा सौ कहानियां, तनि उपन्यास तथा एक नाटक लिखा है। 'बचन का मोल' तथा 'पिया' उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। दो कहानी संग्रह 'मेघ मल्लार' तथा 'आंधी के छन्द' छप रहे हैं।

सान्ध्य-तारा

उच्च आशा को निपीड़ित होते देखकर व अपनी योग्यता का अनुचित उपयोग होते देखकर मनुष्य कभी दुर्निवार भी हो उठता है। कदाचित् इस लिए हो या और किसी बात के लिए हो, सुकुमार ने जब नववधू उर्मिला को देखा, तो एकदम सारे संसार के प्रति विमुख हो गया।

उस जैसे उच्च शिक्षित के लिए निरक्षरा, अशिक्षिता ऐसी बधू ? आई० सी० एस परीक्षा के लिए वह विलायत जाने वाला था, कालेज की प्रत्येक परीक्षा में वह प्रथम आता गया था और साथ ही साथ उसकी कल्पना में सुगन्धित रङ्गीन पुष्प निखरते गये—खुली हवा सुदृश्य बंगला, मोटर और बगल में बैठी विदुषी पत्नी। तो इन सब के स्थान पर देह-भरे रूप और हीरे मोती के अलङ्कार से लदी, अवगुण्ठनवती पत्नी उर्मिला को जब उसने पाया, तब वह जीवन ही से विमुख हो बैठा।

और उर्मिला ? शुभ दृष्टि के समय पाया उसने अपने

कल्पित राज्य के कुँवर कन्हैया को। हाँ–उसके नेत्रों ने उसे धोखा दिया। पति की उस उपेक्षित, उदास दृष्टि को उसने प्रेम की पहली झिझक समझा। बालिका नहीं, युवती तो थी उर्मिला। फिर इससे क्या? अपनी अपनी समझ तो है और है विश्वास। उस सी सरल-हृदय लड़की ने यदि देवता के दान पर विश्वास किया और यदि उसी विश्वास के बल पर कुमारी जीवन की यत्न-सञ्चित सुरभित पुष्पमाला पति पर न्योछावर कर दी हो, तो इसमें हँसने की बात कौन सी है।

इतना सब कुछ तो हो गया, किन्तु फिर उसी अमनोनीत पत्नी को लेकर उसे घर भी लौटना पड़ा। और उर्मिला के सामने उर्मिला को कम प्यार भी न कर सका।

आठ दिन के बाद उर्मिला एक मीठी खुशी लेकर मायके लौट आई। साथिनों से हँस-हँसकर बातें करने लगी। बड़ी बहन प्रमिला ने खोद-खोदकर सुकुमार की सब बातें सुन लीं और बहन की खुशी में उस विधवा का सूना जी भी मस्त हो गया। धनवान पिता की लड़की थी वह। विधवा होने के बाद से मायके ही में रहती थी।

उस दिन सबेरे उठकर प्रमिला काम में जुट पड़ी, नया जमाई सुकुमार आने को था। उर्मिला को मिलने की खुशी थी और साथ ही विच्छेद की व्यथा। सुकुमार दो वर्ष के लिए विलायत जा रहा था। उर्मिला से मिलने वह आ रहा

था, दो वर्ष लग जावें, चाहे तीन क्या ठिकाना।

उस रात आकाश में अनेक तारे थे, चांद में अनेक किरणें थीं, पवन में अपार मादकता थी, और थी उर्मिला के मन में पति के बिछड़ने की अत्यन्त वेदना और सुकुमार के मन में विलायत जाने की अत्यन्त खुशी।

खुशी में वह पुकार उठा—'उर्मिला मैं चला जाऊँगा।'

'और आकाश में यह तारे ऐसे ही हँसते रहेंगे।' दुख में उर्मिला कह उठी।

'तीन वर्ष के लिए तुम्हें छोड़कर जाऊँगा।

'और पवन में ऐसी ही मादकता भरी रहेगी, फूल अपने रंग में मस्त रहेंगे, संसार के काम-काज में परिवर्तन न हो पायेगा, पूर्णिमा के चाँद ऐसी ही दीवट जलायेगा, कोकिला ऐसी ही कूकेगी।'

'सो तो ठीक है उर्मि।'

'हाँ, ठीक है बिलकुल ठीक। केवल मेरा हृदय सूना हो जायगा। मरुभूमी-सी तृष्णा से भरा और सूना।'

'और जब मैं लौट आऊँगा तब ?'

'तब ? कौन जाने उतने दिनों में क्या होता है। शायद यह हृदय तब तक उस सूने बन में ओत प्रोत हो जावे, शायद यौवन की उन्मादता जाती रहे। या तो शायद—शायद उर्मिला ही संसार से उठ जावे। दिन भी तो लम्बे हैं।'

'उर्मि न रहेगी ? अनुचित कहती हो तुम।'

'शायद अनुचित हो, और यदि तुम्हारे लौटने के पहले मैं चल बसी तो ?'

'उस वक्त ? हाँ, यह बात विचारने की है। कहो क्या कहती हो ?'

'तब आकाश में बैठी मैं तुम्हें देखा करूँगी।'

एक कौतुक से सुकुमार ने कहा—'और मैं कैसे जानूंगा कि तुम देख रही हो ?'

'वही कह रही हूँ। वह जो सात तारों का जत्था है, देख रहे हो न ?—हाँ, तो उसी की बाईं ओर में टिमटिमाया करूँगी। सन्ध्या-बेला में जब एक भी तारा न जगेगा, तब मैं उससे भी पहले, सन्ध्या के गले में बाँह डाले चमक उठूँगी। पहचान लेना तुम। जिस दिन वह सान्ध्य तारा तुम्हारी खिड़की में झाँके, उस दिन समझ लेना तुम, कि वह उर्मिला ही है।'

सुकुमार हँस पड़ा और हँसी हँसी में उसने भी कह दिया-'अच्छा ! और यदि तुम्हारे पहले मैं मर जाऊँ, तो आकाश में एक उज्ज्वल नक्षत्र होकर उन्हीं सात तारों के तीन हाथ पीछे दाहिनी ओर चमका करूँगा। जिस दिन वह उज्ज्वल नक्षत्र तुम्हारी खिड़की के सामने आकर झाँके, उस दिन तुम जान लेना कि सुकुमार का अन्त हो गया है।'

बिदाई की बेला निकट होने लगी। पति ने पत्नी-से प्रतिज्ञाएँ कीं बीसियों—और उस कौतुक को देखकर आकाश

के तारे परिहास से हँस पड़े। चाँद के नेत्रों में व्यथा के आँसू भर आए।

(२)

छः मास कटे और फिर बारह भी। दूसरा वर्ष लग गया। पहले मास उर्मिला के निकट लम्बी चिट्ठियाँ आईं, दूसरे मास कुछ छोटी हुईं, तीसरे मास केवल दो आईं, चौथे एक। पाँचवें मास एक छोटी आई। और छठे मास बिलकुल ही बन्द हो गईं।

उर्मिला पहले छिपकर रोई, देवी-देवता को मानता किया, पचासों चिट्ठियाँ लिखीं, माता-पिता व्यस्त हुए, तार भेजा, उत्तर मिल गया—अच्छा है। इसके बाद उर्मिला बिलकुल ही शान्त हो गई। सन्ध्या के पूर्व से वह आकाश को देखा करती। और बस। दिन-भर काम करती, दासी-चाकर से हाथ का काम छीन लेती, देख-सुनकर प्रमिला बहन के लिए व्यथा के आँसू बहाती।

अढाई वर्ष निकल गये। सुकुमार ने घर आने का नाम न लिया। उसका साथी देश लौट आया। उर्मिला के पिता ने उससे जमाई की बात पूछी और सब कुछ सुनकर उनका मुँह गम्भीर हो गया।

'जमाई की खबर नहीं मिलती, इधर तुम भी चुपचाप बैठे हो' उर्मि की माँ ने पति से कहा।

जाते-जाते उर्मिला रुकी। कान लगाकर सुनने लगी।

पिता ने झुँझला कर कहा—'तो क्या करूँ ? उसके लिए प्राण दे दूँ ? सुन न लिया, उसका मित्र क्या कह रहा था ?'

'मर्द है, कभी कुछ भूल-चूक हो ही जाती है। लड़की अपनी है। जमाई के अच्छे-भले की खबर लेना हमें उचित है।'

'वही उचित तो करता जा रहा हूँ गृहिणी। हर महीने तारों में उसके लिए कितने रुपये खर्च हो रहे हैं, कुछ खबर भी रखती हो ?'

'तार देते हो ? वह क्या जवाब देता है।'

पिता के विषाद-खिन्न स्वर की आवाज़ आई।—'यदि जवाब ही देता, तो दुःख हलका हो जाता न।'

'जवाब नहीं देता, यह कैसी बात है।'

'वही तो बात है। एक का भी जवाब नहीं दिया। बाप के मरने से धन का वह मालिक बन गया है। वही अकेला सब कुछ है। बूढ़ा-सयाना कोई है नहीं माँ बेचारी क्या करे।'

'फिर अब क्या होगा ?

'होगा क्या ? समझो कि वह मर गया, बस।'

मर गया है ?—उर्मिला एकदम सिहर उठी—मर गया है वह ! उसका पति मर जावे और तब भी वह दुनिया में जीवित बैठी रहे ? तो किस आशा से, किस के लिए ?

उर्मिला से और सुना न गया। वह भागी-भागी छत पर चली आई। उसका जी धक्-धक् करने लगा। वह आँखें फाड़-फाड़ कर आकाश के प्रति देखने लगी। कहाँ ? हाँ, वह

है तो सात तारों का जत्था। और उसकी दाहनी ओर ? उर्मिला ने डरते-डरते देखा और फिर देखा—नहीं कहीं कुछ नहीं है। वह बार बार कहने लगी—वे हैं और, दृढ़ स्वर से कहने लगी—उर्मि—वे हैं और उसी के हो कर हैं। मरना कैसा ? यदि वह दुनिया में न रहते, तो तारा बनकर अपनी उर्मि को देखने न आते ? वे भला झूठ कह सकते हैं ? और वे बातें ? उर्मिला की चिन्ता लौट पड़ी—हाँ, वे बातें, जो उसकी सहेलियां कहा करती हैं और अभी अभी जो वह पिता के मुँह से सुनकर आ रही है, वही शराब पीना, दूसरा विवाह करना आदि ? सब झूठ हैं, बिलकुल झूठ। वह इन बातों पर विश्वास नहीं कर सकती है। वह तो उसके हैं, फिर दूसरी के कैसे हो सकेंगे ? वैसी प्रेम की व्याकुलता, वैसे आदर-सने शब्द, वैसी चाह, क्या यह सब मौखिक हो सकता है।

उर्मिला ने बार बार मन को समझाया।—वे सुविशुद्ध हैं, वैसे ही रहे आवेंगे, और एक दिन आवेंगे, उन्हें एक दिन आना ही पड़ेगा और यदि।—वह चौंककर आकाश के प्रति निहारने लगी, कहाँ गये वे सात तारे ?—वह तो हैं, और उन तारों के दाहिनी ओर? अरे, यह क्या?—क्या—क्या ? दूसरे क्षण उर्मिला अपनी भूल पर हँसी, मुसकराई, कहां ? वह तो कुछ भी नहीं है। कैसी भूल हो गई। विज्ञ भाव से विचारने लगी—वह भूल तो मनुष्यमात्र से होती है, इस से क्या!

(३)

'उर्मि-उर्मि' पुकारती हुई प्रमिला छत पर पहुँच गई। उर्मिला तभी छत पर आई थी और आकाश की ओर देख भी न पाई थी—'तू सन्ध्या होते ही क्या देखा करती है बहन ?'

'मैं ? कुछ तो नहीं दीदी।' यथा सम्भव गम्भीर बन कर कह दिया उर्मिला ने।

'कुछ नहीं ? किन्तु ऐसा नहीं हो सकता। कहो, क्या देखती हो। मुझ से छिपाना व्यर्थ है।'

'कुछ नहीं दीदी।'

'शायद न हो। शायद आकाश की ओर मुँह किये तू उस की बात सोचती हो।'

उर्मिला चुप रही।

प्रमिला के नेत्र भर आये—'बहन, तू घबराना नहीं। यदि वह निर्मोही न भी आवे, तो तुझे जीवन-निर्वाह की कमी कभी न होगी। बाबू जी कहते हैं, सब सम्पति तेरे नाम लिखेंगे।'

उर्मिला काँप उठी—'ऐसा मत कहो दीदी। वे आवेंगे, मुझे छोड़कर वे कब तक रह सकते हैं।'

इस सरल, दृढ़ विश्वास को देखकर, जो कुछ प्रमिला कहना चाहती थी, कह न सकी। चुप हो रही।

'वे आवेंगे दीदी।' उसने ज़ोर के साथ फिर कहा।

'हाँ बहन, आवेगा।' क्षीण स्वर से प्रमिला ने कहा। यद्यपि प्रमिला जानती थी कि यदि सुकुमार आवेगा भी, तो

उर्मि का होकर न रह सकेगा। फिर भी उसे कहना पड़ा—वह आवेगा।

माता ने पुकारा। प्रमिला नीचे उतर गई। उर्मिला अकेली बैठी आकाश निहारने लगी। सात तारों की दाहनी ओर? हाँ-हाँ वह जुगनू सा कुछ टिमटिमा रहा है न? उसका जी धक्-धक् करने लगा। डरते डरते उसने देखा और अच्छी तरह से देखा। जी शान्त हुआ, नहीं कुछ नहीं है। वे जीवित हैं और अच्छे हैं। किन्तु उन्हें देखे विना मैं कब तक जीऊँ? तो मैं ही क्यों न तारा बनी-बनी उन्हें देखा करूँ? परन्तु वह तो केवल रात में देखने पाऊँगी और दिन भर? हानी क्या है, उतना भी क्या कम है? दिन-भर में सूरज की डेहरी में पड़ी सोया करूँगी, सूर्य-किरण से अपने अलङ्कारों को रँगा करूँगी, और वर्षा ऋतु में चातक के तृष्णार्त कण्ठ में बूँद बूँद पानी बन चू पड़ूँगी। जब सान्ध्यदीप न जल पायेगा, मन्दिर में आरती जब न हो पायेगी, तब मैं सात तारों की बाईं ओर अपने देवता की आरती कर लिया करूँगी।

तो ऐसी ही आशा, आश्वास के भीतर से जब तीन लम्बे लम्बे वर्ष कट गए और चौथा वर्ष आरम्भ हो गया, तब उर्मिला निराश तो नहीं, किन्तु अधीर हो गई पति को देखने के लिए दिन-रात वह चुप बैठी रहा करती। न भोजन करती, न नींद भर सोती। डाक्टर-वैद्यों से घर भर गया। राजयक्ष्मा रोग बतलाया डाक्टरों ने। घर के लोग उदास हो गये। उसे

लेकर माता-पिता पहाड़ पर चले गये । किन्तु देखकर सब विस्मित हुए कि बीमार पड़ने के बाद उर्मिला असम्भव प्रसन्न सी लगने लगी । वह पड़ी-पड़ी बहन से हँसी की बातें करती। माता पिता से हँसकर बोलती ।

उस दिन आकाश मेघ-मुक्त था । पूर्णिमा का चाँद पृथ्वी को दुग्ध-फेनिल कर रहा था । रात के बारह बज चुके थे। उर्मिला ने धीरे से पुकारा—'दीदी ।'

प्रमिला उसके पास पड़ी थी, उठकर बैठ गई—'कहो बहन।'

'आज भी पूर्णिमा है न ?'

'हाँ।'

'आज भी अनेक तारे आकाश में जाग रहे हैं न ?'

'हाँ उर्मि ।

'और आज भी तमाम खुशी पृथ्वी-आकाश में भरी है न?'

विस्मय से प्रमिला ने कहा—'क्या कह रही है उर्मि ?'

'तुम उसे नहीं समझोगी दीदी । उस दिन भी ऐसी ही खुशी अखिल ब्रह्माण्ड में भरी थी ।'

'किस दिन री पगली ?'

'उसी विच्छेद के दिन दीदी । जिस दिन वह गये थे, उस दिन भी ऐसी ही खुशी आकाश में थी । वह था विच्छेद का दिन और आज है मिलन का दिन । मानो वह अपने आप को सुनाकर बोली ।

'मिलन का दिन !' प्रमिला सिहरी ।'

'रोती क्यों हो ? उन सात तारों के पास मैं एक सान्ध्य तारा बनी उन्हें देखा करूँगी।'

'आज तू क्या बक रही है उर्मि। तुझे हो क्या गया है।'

वह मुसकराने लगी।

'ज्वर आज नहीं है, शान्त होकर सो रहो।'

'सो रहूँ ? उसकी त्यारी कर रही हूँ न। खिड़की खोल दो, ज़रा अच्छी तरह से। ठण्डक कहाँ है। हाँ, अब ठीक हुआ। तुम दीदी कभी मुझे देख लिया करो, सात तारों की बाईं ओर तुम्हारी उर्मि रहा करेगी।'

'उर्मि–उर्मि, क्या कहती है, सो जा धीरे।'

'चुप, चुप।' मुसकरा-मुसकरा बोली उर्मिला।'

'उर्मि, उर्मि !'

'नींद आ रही है ?'

'एक बात तो और कह दो उर्मि।'

कोई बोला नहीं। प्रमिला का आर्त चीत्कार कमरे के कोने कोने में माथा पीटता फिरने लगा।

(४)

लन्दन शहर के गिर्जे की घड़ी में बारह की घण्टी टनटना उठी। सुकुमार पलँग पर उठ बैठा। खिड़की उसने एक आतुरता से खोली। विस्मित तरुणी ने अलसाये हुए स्वर से कहा—'यह क्या करते हो। ऐसी सर्दी में खिड़की क्यों खोल दी !'

सुकुमार ने कुछ उत्तर न दिया। देर तक अपेक्षा के बाद भी जब सुकुमार वहाँ से न हटा, तो एमिली उठकर निकट गई। उसे हिलाकर कहा—'यहाँ क्या कर रहे हो ! कोई स्वप्न तो नहीं देखा !'

'स्वप्न ! नहीं एमली उर्मिला तो सामने खड़ी है, फिर इसे स्वप्न कैसे कहूँ !'

एमिली मुसकराई—'हाँ-हाँ, तुमने स्वप्न ही देखा है। चलो, पलंग पर सो रहो।'

'मैं ? किन्तु वह मुझे देखने के लिए ऐसी सर्दी में सारी सारी रात खड़ी रहेगी और मैं आराम से सोता रहूँगा ! उसके न हटने से मैं सोऊँ कैसे ?'

'किस की बात कह रहे हो यहाँ तो कोई नहीं है।'

'नहीं है ? देखती नहीं, सात तारों के बाईं ओर वह बैठी मुझे देख रही है।'

'वह कौन ?—अत्यन्त विस्मय से एमिली ने पूछा।'

'मेरी उर्मिला।'

'उर्मिला किस का नाम है ?'

'मेरी पत्नी का।'

'तुम विवाहित हो ?'—क्रोध से एमिली हट कर खड़ी हो गई।

'हाँ सो तो मैं पहले ही कह चुका था।'

कुछ सोच कर एमिली बोली—'ठीक है, किन्तु साथ ही

तुम ने कहा था, उसे तलाक दे चुके हो।'

'सो भी ठीक है एमिली। मैं ने तब सोचा था कि उसे मैं त्याग कर चुका हूँ, किन्तु अब देखता हूँ, उसने तो मुझे त्याग किया नहीं।'

'प्रतारक।' कहा एमिली ने और क्रोध, क्षोभ से काँपती निकल कर चली गई।

उस दिन जहाज के बन्दर पर भीड़ में दबता हुआ सुकुमार जहाज़ की ओर बढ़ा चला जा रहा था। वह देश लौट रहा था। एमिली से उसका तलाक हो चुका था।

सन्ध्या धूसर-वसन सँभाले पृथ्वी पर उतर पड़ी। बन्दर पर एक स्वदेशी युवक का हाथ थामे एमिली खड़ी थी। किन्तु सुकुमार की दृष्टि उस ओर नहीं थी। वह आकाश की ओर मुँह किये चल रहा था। यात्री जहाज़ पर बैठ गये।

'मिस्टर खरे इसी जहाज से भारतवर्ष लौट रहे हैं न?' साथी साहब ने एमिली से पूछा। अवज्ञा के साथ एमिली ने उत्तर दिया—'हाँ। भारतवासी जैसे झूठे होते हैं, वैसे ही विकृत मस्तिष्क।'

'ऐसा!' साहब एमिली की बातों से विस्मय के साथ ही साथ आमोद भी अनुभव कर रहा था।

एमिली ने कहा—'हाँ महाशय, एक तारे को वह अपनी पत्नी बतलाता था।'

'तारे को?' वह दोनों ज़ोर से हँसे। और उस हँसी में

जहाज छूटने की गम्भीर घण्टा-ध्वनि मिल कर एकाकार हो रही। जहाज़ भागा चला जा रहा था। एमिली दूरबीन लगाये उस विकृत मस्तिष्क भारतवासी को देख रही थी और सुकुमार एकाग्र दृष्टि से आकाश में निहार रहा था, सात तारों का जत्था और उस जत्थे की बाईं ओर उज्ज्वल ज्योतिर्मय तारा। जहाज के साथ साथ तारा भी भागा भागा चला जा रहा था। उधर आकाश में तारों की फुलवारी, समुद्र के नीले जल में तारों की छाया और बीच में पलक हीन नेत्रों से बैठा रह गया सुकुमार।

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा

श्री पृथ्वीनाथ शर्मा बी० ए०, एल एल० बी० लाहौर के एक युवक कहानीकार हैं । आप सिविल सेक्रेटेरियेट में काम करते हैं । कहानियां आपकी चाँद, सरस्वती, माधुरी आदि पत्रिकाओं में निकलती रहती हैं । आपकी कहानियों का एक संग्रह 'पंखुड़ियां' के नाम से प्रकाशित हो चुका है । इधर आपने नाटक भी लिखने आरम्भ किए हैं । आपका एक छोटा सा नाटक 'दुविधा' नाम से प्रकाशित भी हुआ है ।

श्री पृथ्वीनाथ की कहानियों का सब से बड़ा गुण 'कथानक का गठन' है । प्लाट आप पहले अपने मास्तिष्क में बना लेते हैं और फिर उसे कहानी की कला को सामने रख कर लिख डालते हैं । सामाजिक कहानियां, जिन में कोई न कोई उद्देश्य छिपा होता है, लिखने में आपको कुशलता प्राप्त है । चरित्र-चित्रण भी आपका सुन्दर होता है । 'रज्जू का सौदा' आपकी एक मर्म-स्पर्शी रचना है ।

रज्जू का सौदा

रज्जू ने बच्चे को गोद में उठा लिया । झोंपड़ी से बाहर निकल बाज़ार की ओर चल पड़ा । बच्चे के अनिश्चित परन्तु आशामय भविष्य के लिए आज वह ममता जैसी मधुर तथा बलवती वस्तु को लात मारने जा रहा था । परन्तु वह बेबस था । उसके मुँह में दूध की बूँद गए दूसरा दिन ।

कुछ ही क्षणों में वह बाज़ार जा पहुँचा । वहाँ विशेष चहल पहल न थी । फटे तथा मैले कपड़े पहने हुए वह बाज़ार के गर्द-गुबार का अंग बन गया । किसी ने उसकी ओर देखा तक नहीं । उसे एक दुकान बन्द दिखाई दी । तख़्ता काफ़ी चौड़ा था । उसने अपने चारों ओर देखा । बच्चे को वहाँ लिटा कर चुपके से आगे चल दिया । बालक कुछ देर मौन पड़ा रहा । आख़िर उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें इधर-उधर दौड़ाईं । शायद भाँप गया । ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगा । लोगों का समूह इकट्ठा हो गया ।

'किस का बच्चा है ? कितना सुन्दर है !' सब एक

दूसरे से कह रहे थे। परन्तु उसे अपनाने वाला वहाँ कोई न था।

एकाएक भीड़ के पास एक नीली मोटर आकर ठहर गई। मोटर से सिर निकाल कर एक व्यक्ति ने पास वाले आदमी से पूछा—'क्यों जी, क्या मामला है ?'

उसने अदब से जवाब दिया—'जनाब एक लावारिस बच्चा पड़ा है। कोई एक साल का होगा।'

मोटर-स्वामी को कुतूहल सा हुआ। मोटर से उतर कर वे बच्चे की ओर देखने लगे। बच्चा बहुत सुन्दर था। वे उस पर मुग्ध से हो गये। दो मिनट तक एकटक उसकी ओर देखते रहकर वे आगे बढ़े और उसे गोद में ले लिया। उन्होंने कहा—'मैं इसके मां-बाप का पता लगाने की कोशिश करूँगा।'

किसी ने कोई आपत्ति न की। शहर के नामी वकील तथा म्युनिसिपल कमिश्नर बाबू राधानाथ को कौन नहीं जानता था।

वे बच्चे को लिये मोटर में जा बैठे। मोटर हवा हो गई।

(२)

बाबू राधानाथ ने दो चार दिन बच्चे के माता पिता का पता लगाने की कोशिश की। परन्तु वह असफल रहे। उनके अपने कोई सन्तान न थी, इसलिये उन्होंने बच्चे को स्वयं पालने का निश्चय किया।

एक विलायती तथा एक हिन्दुस्तानी धाय और दो नौकरों की देख-रेख में बालक का पालन-पोषण होने लगा। शाम-सवेरे गाड़ी में बैठकर बच्चे को हवा खिलाई जाने लगी। दोपहर के आमोद के लिये दो-तीन प्रकार के झूले डलवा दिये गये थे।

रज्जू यह सब कुछ देखता और प्रसन्न होता था। यही वह चाहता था। परन्तु कभी उसके हृदय में प्रेम की अग्नि धधक उठती थी। बच्चे को छाती से चिपटाने के लिए मन बेचैन हो जाता था। जी में आता था कि राधानाथ से साफ साफ कह दे और अपना लाल वापस माँग ले। एक दो बार उसकी आतुरता उसे खींचकर बाबू राधानाथ के कमरे तक ले भी गई, परन्तु अन्दर जाने का साहस न हुआ। लौट आता और सारा उत्साह भङ्ग हो जाता।

इस भाँति बाबू राधानाथ के बँगले के इर्द-गिर्द चक्कर काटते रहकर रज्जू ने छः वर्ष बिता दिए।

(३)

एक दिन जब रज्जू वहाँ पहुँचा तो कोठी के द्वार बन्द पाए। चकित हो गया। इधर-उधर देखा। दरवाज़े के बाहर एक चौकीदार हाथ में लट्ठ लिए बैठा था। रज्जू उसके पास जा पहुँचा। चौकीदार ने नवागन्तुक की ओर बेपरवाही से देखा। जेब से डिबिया निकाल चूना और तमाखू मलने लगा। चौकीदार को इस भाँति अकड़ा देखकर रज्जू ने उसे फुस-

लाना चाहा। उसने कहा—'जय राम जी की भाई साहब।'

चौकीदार पिघल गया। नर्मी से जवाब दिया—'जय राम जी की।'

'आज द्वार क्यों बन्द है भैया?' रज्जू ने प्रश्न किया।

तमाखू और चूना मुँह में रखते हुए चौकीदार ने कहा—'अरे क्या पूछते हो? अमीरों के चोंचले हैं। सात वर्ष का लड़का और उसे पढ़ाने के लिए विलायत ले गये हैं। देश में मानों सकूलों का अकाल पड़ गया है।'

रज्जू को मानों पैनी कटार सी चुभ गई। बीच में ही बोल उठा—'विलायत! उसे विलायत ले गये?' चौकीदार अपनी उमंग में था। रज्जू की हैरानी की ओर उसका ध्यान नहीं गया। इतने में रज्जू सँभल गया। चौकीदार अभी तक अपनी ही हाँके जा रहा था।

रज्जू ने पूछा—'अच्छा, कौन कौन गया है?'

'बाबू, बीबी और रत्नू। बाबू और बीबी तो शीघ्र ही लौट आयेंगे। रत्न वहीं पढ़ेगा।'

कुछ ठहर कर उसने फिर कहा—'भैया अपने पेट का बच्चा होता तो उसे ऐसे फेंकने न जाते।'

रज्जू ने कुछ कहना चाहा, परन्तु चौकीदार के अन्तिम वाक्य ने उसके हृदय में उथल-पुथल मचा दी। उसका गला भर आया और शब्द बाहर न निकल सके। दो एक क्षण

एकटक चौकीदार की ओर देखता रहा । फिर आह भर कर लौट पड़ा।

रज्जू घर पहुँचा विना दिया जलाए ही गुदड़ी में घुस गया। टूटी हुई छत से छिन कर चन्द्रमा की एक दो किरणें उस अँधेरी कुटिया में प्रवेश करने का विफल प्रयास कर रही थीं। रज्जू ने विचित्र मुस्कराहट से उनकी ओर देखा, और व्यग्र हो उधर से मुँह मोड़ कर गुदड़ी में छिपा लिया। जिसका मन अन्धकारमय हो उसे अन्धकार ही प्रिय होता है। उसे एक छोटी सी किरण भी बेचैन कर सकती है।

रज्जू की आँखों के सामने उसके दो लड़के मर गए। एक लड़की मरी । चार वर्ष तक दुःख तथा यंत्रणाएँ सह चुकने के बाद पत्नी की भी इह-लीला समाप्त हो गई। उसने भी असीम दुःख सहे। इधर कई दिनों से एक बेर भी पेट भर कर न खाया था। परन्तु जो पीड़ा उसे अब हो रही थी उसका अनुभव उसने आज तक कभी नहीं किया था। एक वस्तु उसकी होती हुई भी उसकी नहीं थी । उसकी यह स्थिति बिलकुल नई तथा अत्यन्त करुणाजनक थी।

(४)

रज्जू सुबह से प्रतीक्षा में बैठा था । उसका पुत्र आज चौदह वर्ष के बाद विलायत से लौटा था । परन्तु उसका कितना दुर्भाग्य कि जब तक लड़का शाम की सैर को न

निकले, रज्जू को उसके दर्शन न हो सकते थे। उसकी आँखें एकटक लगी थीं, हृदय धड़क रहा था, कल्पना इधर उधर उसे उड़ा रही थी। उस दिन आकाश का रंग रज्जू को अत्यन्त प्रिय मालूम हो रहा था।

सहसा धूल का एक बवंडर-सा उड़ाती हुई एक मोटर रज्जू के निकट आकर ठहर गई। रज्जू घबड़ाया सा उठ खड़ा हुआ, देखा, शोफर के सिवा मोटर में कोई न था। पास चला गया। डरते डरते शोफर से पूछा—'भैया मोटर किस के लिए आई है?'

शोफर रज्जू को जानता था। जब से नौकर हुआ था, रज्जू को कोठी के इर्द-गिर्द कहीं न कहीं उसने बैठे हुए अनेक बार देखा था। दो चार बार बातचीत भी हुई थी। इसलिए उसने बिना कुतूहल के जवाब दिया—'छोटे साहब सैर को जा रहे हैं।'

'कब?'—रज्जू का गला भर आया।

'अभी, थोड़ी देर में'—शोफर ने मोटर के हुड को नीचे गिराते हुए जवाब दिया।

रज्जू दरवाज़े के पास मकान की ओर टकटकी बाँधे खड़ा हो गया। दस मिनट भी न गुज़रे थे कि एक सुघड़ युवक की मूर्ति प्रकट हुई। गोरा रंग, बड़ी बड़ी आँखें, मुसकराते हुए ओंठ, विलायती सिला हुआ बढ़िया कोटिंग का सूट, सिल्क हैट, सिल्क टाई और बल्लौर की भाँति चमकता हुआ जूता।

रज्जू भौंचक्का सा रह गया। जहाँ खड़ा था कुछ क्षण वहीं खड़ा रहा। यही छोटे साहब थे।

आखिर रज्जू ने अपने आप को ज़रा सँभाला। कपड़े ठीक ठाक कर मोटर की ओर लपकते हुए रत्नू के सम्मुख जाकर खड़ा हुआ।

'क्या चाहते हो ?'—पुत्र ने पिता से पूछा।

रज्जू की ज़बान पर मुहर लग गई। मूर्खों की भाँति टुकर टुकर देखता रहा।

कोई भिखारी है, युवक ने सोचा। जेब में हाथ डाल, एक आना रज्जू की ओर फैंक मोटर में जा सवार हुआ। मोटर एक क्षण में ही भाग चली।

रज्जू ने मोटर की ओर देखा, और पाँव के पास पड़े हुए निकल के टुकड़े की ओर देखने लगा। उसकी आँखों से एक दो आँसू टपके और फिर रुक गये।

अपने किए सौदे पर रज्जू किस को दोष दे सकता था।

[illegible] :-

Resembling to my own

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

श्री 'अश्क' का जन्मस्थान जालन्धर है। वहां से बी॰ ए॰ पास करके आप १९३१ में लाहौर आ गए। तब चूंकि आप उर्दू में लिखा करते थे, इसलिए लाहौर में आकर पहले पहले आप ने कुछ उर्दू पत्रों के सम्पादन विभाग में काम किया। फिर १९३४ में आपने कानून ले लिया पर एल एल॰ बी॰ करने पर भी, आप अपनी पत्नी की लम्बी बीमारी और मृत्यु के कारण, प्रेक्टिस न कर सके। आजकल आप स्वतन्त्र रूप से साहित्य-सेवा कर रहे हैं।

कहानी लिखना आपने बहुत पहले आरम्भ कर दिया था। कालेज के दिनों में आपकी उर्दू कहानियों का एक संग्रह 'नौ रत्न' के नाम से प्रकाशित हुआ। १९३३ में आपकी कहानियों का दूसरा संग्रह निकला जिसका परिचय स्व॰ प्रेमचन्द ने लिखा। उनके संसर्ग में आने के बाद ही आप हिन्दी में लिखने लगे और आपकी पहली हिन्दी कहानी भी स्व॰ प्रेमचन्द के मासिक पत्र 'हंस' में ही निकली।

आपकी शैली के सम्बन्ध में आपके कहानी संग्रह का परिचय लिखते हुए स्व॰ प्रेमचन्द ने लिखा है—

"साहित्य के दूसरे अंगों की भाँति कहानी की सफलता भी उसके प्रभाव में है और प्रभाव रचना में गुणों के बाहुल्य का नाम है। जब मनोरंजकता अपनी पराकाष्ठा को पहुँच जाती है तो वह प्रभाव बन जाती है। मैं 'अश्क' जी की कहानियों को रुचि तथा शौक से पढ़ता रहा हूँ और मेरे दिल पर सदैव उनका प्रभाव पड़ा है।"

और यह है भी सच। भावों की मौलिकता, कथानक की मनोरंजकता, शैली की मार्मिकता तथा गहरी अनुभूति के कारण 'अश्क' जी सदैव अपने पाठकों पर एक गहरा प्रभाव छोड़ने में सफल होते हैं।

गल्पकार होने के साथ साथ आप एक सफल नाटककार तथा कोमल कवि भी हैं। गतवर्ष आपका एक सुन्दर नाटक 'जय-पराजय' हिन्दी में निकला है। एकांकी नाटक भी आपने कई लिखे हैं जिनका जनता में अच्छा सम्मान हुआ है।

उदयशंकर भट्ट

Best writer

Best writer

पाषाण

Get the moral or
story pl

उस समय अपनी मृत-पत्नी के सिराहने खड़े-खड़े कैलाश की संगदिली की सभी घटनायें एक एक करके मेरी आँखों के सामने फिर गईं।

* * *

सायंकाल का समय था। छाया को वीमार पड़े कोई एक वर्ष बीता होगा। मैं नीचे आँगन में बैठा उसके लिए औषधि तैयार कर रहा था कि वह ऊपर से उतरी और कुछ उदास सी तेज़ी के साथ मेरे सामने से गुज़र कर अपने कमरे में चली गई।

मैंने औषधि वहीं छोड़ दी और भागा भागा उसके कमरे में पहुँचा। बिस्तर में मुँह छिपाए वह रो रही थी।

चुपचाप खड़ा मैं कुछ क्षण उसे देखता रहा। मेरा दिल धड़क रहा था और मन में सन्देह था कि हो-न-हो किसी ने इसे अवश्य ही कोई-न-कोई चुभती वात कह दी है। कुछ ही क्षण पहले तो वह ऊपर गई थी कि ज़रा हवा में लेटे। नीचे वहुत

गर्मी थी। मैंने ही कहा था—ज़रा ऊपर चली जाओ, हवा में लेटो। और वह इतनी जल्दी उतर आई थी। आगे बढ़कर मैंने उसके कन्धे को छुआ। वह उसी तरह लेटी रही।

मैंने कहा—छाया।

उसने करवट लेकर मेरी ओर देखा। ज्वर के वेग से उसका चेहरा लाल हो रहा था और आँखें भरी हुई थीं।

—क्या बात है?

एक निमिष वह मेरी ओर देखती रही और फिर उसने कहा—मुझे अस्पताल में दाख़िल करा दो! और आँसू अनायास उसकी आँखों से बहने लगे।

मैं चारपाई पर बैठ गया। उसका सिर अपनी गोद में लेकर मैंने उसकी आँखें पोंछीं। पूछा—कहो तो सही, क्या बात है?

उसने सिसकते हुए कहा—मुझे दिक़ हो गया है। घर में रहूँगी तो दूसरों की जान जाने का भी डर रहेगा। अस्पताल में दाख़िल करा दोगे तो जीवन के जो एक दो दिन शेष हैं, आराम से कट जायेंगे। फिर तुम्हें भी कुछ देर आराम मिलेगा और घर वालों को भी कष्ट न होगा।

मेरा गला सूखा जा रहा था। मैंने कहा—छाया तुम मेरे कष्ट का ख़याल न करो। मेरी तो जान लेकर भी तुम्हें कोई निरोग कर दे तो देने में संकोच न करूँ। यह तो बताओ, यह कहा किसने कि तुम्हें दिक़ हो गया है।

—कहेगा कौन? दिखाई जो देता है, भाग्य में जो जो सहना बदा है, सहना पड़ेगा, जो जो सुनना है, सुनना पड़ेगा। मैं तो यह सोचती हूँ कि यदि परमात्मा को उठाना ही था तो यों ही उठा लेता। तड़पने और तड़पाने के लिए यह रोग क्यों लगा दिया ?

मेरा गला भर आया। मैंने कहा—छाया ! मैं मिन्नत करता हूँ। तुम बताओ तो सही, तुम से यह बात कही किसने ?

—तुम शोर मचाओगे। मैं कहूँ क्या ?

—मैं ज़रा भी नहीं बोलूँगा। तुम कहो तो सही।

वह बोली—यहाँ दम घुट रहा था। तुमने अनुरोध किया तब ऊपर चली गई। ग़लती से अपने बिस्तर के बदले कैलाश के बिस्तर पर लेट गई। उसने आते ही कहा—'तुम्हें आप तो मरना है, दूसरों को साथ क्यों लिए मरती हो ?' और न जाने उसने क्या क्या कहा। तुम्हीं बताओ, क्या मैंने जान बूझकर ऐसा किया। मुझ से तो जहां तक होता है, स्वयं ही इस बात का ख़याल रखती हूँ, किसी को छूती तक नहीं, अपने बच्चे तक को गोद में नहीं लेती।

वह ज़ोर ज़ोर से रोने लगी थी और मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया था। वहीं बैठा मैं अपनी बेबसी पर विचार करने लगा। जी में आता था, जाकर उसका और अपना सिर फोड़ लूँ, इतना शोर मचाऊँ कि सब के होश ठिकाने आ

जाएँ। यह सब माता पिता की शिक्षा का ही तो परिणाम था, जो मुझे उसके पास जाने से रोकते थे, वे मेरे भाई को क्यों न रोकेंगे। उस समय मुझे माँ की पाठ-पूजा, नेम-धर्म, पाप-पुण्य की सब बातें निकम्मी और निरर्थक प्रतीत हुईं और मैंने निश्चय कर लिया कि मैं छाया को लाहौर ले जाऊँगा। जहाँ कैलाश जैसे पाषाण बसते हों, वहाँ बीमार को रखना उसे जीते जी मृत्यु के मुँह में धकेलना है।

उस रात को मुझे नींद नहीं आई। जिस बात से मैं डरता था, अन्त में वही हुई। चाहता था कोई उसका दिल न तोड़े, इसे अपने जीवन से निराश न करे और यह कैलाश!—उस ने वही बात कह दी—तुम्हें तो मरना है, हमें भी साथ क्यों लिए मरती हो। कितने कटु शब्द थे? इनका एक एक अक्षर मेरे हृदय में चुभा जा रहा था। उस समय अपनी बेबसी पर मेरे आँसू आ गए और मैंने चादर के आँचल से उन्हें पोंछ डाला। किन्तु दूसरे ही क्षण दुर्बलता का यह भाव दूर हो गया और दृढ़ता ने उसका स्थान ले लिया। मैंने निश्चय कर लिया, प्रातः छाया को लेकर लाहौर चला जाऊँगा।

और अभी तीन ही बजे होंगे कि मैंने माँ को जगाया और कहा—मैं लाहौर जा रहा हूँ।

वे आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगीं।

मैंने कहा उठकर थोड़ा-बहुत सामान तैयार करा दो।

उन्होंने मेरे बिखरे हुए बालों और उड़े हुए चेहरे की ओर

देखा और कहा—पागल हो गये हो जग्गू ?

—हाँ !

वे चुप हो गईं।

और फिर जल्दी जल्दी तैयारी करके मैं ताँगा ले आया और जब हम चलने लगे तब मैंने बिस्तर पर सोते हुए बच्चे को उठाया।

माँ रो पड़ीं—इसे भी क्यों मुझ से छीन रहे हो ?

मैंने बच्चे को वहीं छोड़ दिया। माँ के पाँव छुए और छाया को लेकर तैयार हो गया। माँ ने चलते समय मेरे हाथ में दस रुपये के दो नोट रख दिए और कहा—आवश्यकता होने पर लिखना। उन्होंने हमें रुद्ध कंठ से आशीश भी दी, किन्तु कैलाश जागता हुआ भी नीचे न उतरा। हाँ, इतना अवश्य किया कि जब बच्चा जागकर रोने लगा तब उसने वहीं ऊपर लेटे लेटे उसे डाँट दिया। अन्दर की साँस अन्दर और बाहर की बाहर और बच्चा सहमकर चुप हो गया।

उस समय मेरे दिल की गहराइयों से बरबस एक दीर्घ निःश्वास निकल गया और मैं कुछ उन्माद की सी अवस्था में सीढ़ियां उतर आया।

* * * *

फिर सात महीने बाद एक रात थी—दुख की तरह काली, मुसीबत की तरह भयानक ! एक बजा होगा। मैंने अपने घर का दरवाजा खटखटाया और कोई आवाज़ न आने

पर एक लम्बी साँस लेकर अपने समीप ही कुर्सी पर लेटी हुई दुर्बल और कृशकाय छाया पर नज़र डाली। उन दोनों कुलियों को भी देखा जो स्टेशन से उसे उठाकर लाए थे। मुहल्ले के लैम्प की धीमी रौशनी में यह सब कुछ स्वप्न-का-सा दिखाई देता था।

मैंने दोबारा आवाज़ दी और कुंडी खटखटाई। मकान की मुँडेर पर बैठे हुए जंगली कबूतरों ने डरकर पर फटफटाए। ऊपर से कुछ ध्वनि-सी सुनाई दी, जैसे कोई जाग उठा हो। मैं फिर कुंडी हिलाने ही लगा था कि रुक गया। इन चन्द मिनटों में ये दुःखमय सात महीने अपनी विविध विपत्तियों के साथ मेरी कल्पना के सम्मुख फिर गए—लाहौर में हकीमों और डाक्टरों के पीछे मारे मारे फिरना, सब ओर से निराश होकर अस्पताल की शरण लेना, खर्च चलाने के लिए दिन रात काम करना, एक्स-रे, यक्ष्मा का फतवा, अस्पताल के आशा और निराशा के दिन, कभी आशा का सहारा लेना, कभी निराशा का दामन पकड़ना, गर्मियों का कष्टदायक मौसम, पालमपुर, पहाड़ी पेचिश, वापसी और अब हड्डियों का पिंजर यह पत्नी, वैसी ही काली रात और वही मकान जिसे सात महीने पहले छोड़ दिया था—सब कुछ आँखों के सामने फिर गया।

माँ ने दरवाज़ा खोला, मैंने चरण छुए, उन्होंने आशीश दी, छाया ने मरी हुई आवाज़ में प्रणाम किया, किन्तु उठ न सकी। माँ ने आशीर्वाद दिया—शीघ्र ही स्वस्थ हो बेटी और

अपने घर प्रसन्न रह। फिर छाया ऊपर के खुले और हवादार कमरे में पहुँचाई गई। कुलियों को मैंने मज़दूरी दी और छाया के आराम का प्रबन्ध करके दालान में आया और मां से संक्षिप्त रूप में अपने दुःखों की कहानी कही। बच्चे को देखने के लिए मेरी रूह तड़प रही थी। माँ से पूछा। कहने लगीं —ऊपर कैलाश के पास सोता है, अब तो 'चाचा' 'ताया' सब कह लेता है, हमारा तो डर मानता ही नहीं, बस उसी से डरता है।

जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ नापता मैं ऊपर कैलाश के कमरे में पहुँचा। वह कदाचित् अभी-अभी पढ़ कर सोया ही था या शायद मेरी आवाज़ से जाग उठा था। उसने लैम्प जलाया मेरा अढ़ाई वर्ष का अरुण बचपन की मीठी मादक नींद सो रहा था। उसे क्या मालूम, उसकी माँ अपनी हसरतों और अरमानों, इच्छाओं और आशाओं के साथ, मौत की गहरी अन्धकारमय खोह के मुँह पर पहुँच चुकी है और किसी घड़ी भी अथाह अँधेरे में लोप हो जायगी; उसे क्या मालूम उसका पिता विपत्तियों के निरन्तर हमलों से थक गया है, हार गया है। वह तो सो रहा था, कष्टों और दुखों से बेख़बर—शैशव की मीठी, मद-भरी नींद!

मां ने हँसकर कहा—हम तुम दस आवाज़ें दें तो शायद न जागे, और कैलाश अगर एक ही आवाज़ दे दे तो तत्काल जाग उठे। और कैलाश से बोलीं—कैलाश ज़रा देना आवाज़!

कैलाश ने अपनी शुष्क और भयानक हँसी के साथ आवाज़ दी। बच्चे ने सोते-सोते कहा—हां जी !

कैलाश ने कहा—उठ !

बच्चा उठने लगा।

—लेट जा !

और बच्चा लेट गया।

—गा !

और सहमा हुआ वह सोते सोते तान लगाने लगा।

—उठ और नाच ! कैलाश ने जैसे अपनी सफलता पर फूलते हुए गर्व से कहा।

बच्चा डर कर उठने लगा था कि मैंने उसे सीने से चिमटा लिया। इतनी संगदिली ! ऐसे ज़ालिम के साथ रह कर बच्चा क्या शोख़ और चञ्चल होगा ? उस जैसा शुष्क और गंभीर बन जाए तो सन्देह नहीं। लेकिन मैं तो बच्चों की चञ्चलता को प्यार करता हूँ, मुझे तो उनकी शोख़ी पसन्द है। जो बच्चा शोख़ नहीं वह बच्चा कैसा, वह तो बूढ़ा है। मां ने कहा—बस डरता है तो इसी गुरू से। मेरे मुँह पर तो थप्पड़ दे मारता है। हठी ऐसा है कि क्रोध आ जाए तो जो वस्तु हाथ में आए पटक देता है। किन्तु यदि कहीं कैलाश ऊपर से भी कह दे, 'अरुण', तो बस वहीं का वहीं, चुपचाप खड़ा हो जाता है। इसके पश्चात् मां हँसीं, किन्तु मैं बच्चे को सीने से चिमटाये अपनी चारपाई पर जा लेटा और सोचने लगा, मां

के जीते जी यह हाल है, उसके मरने के बाद क्या होगा।

* * * *

फिर वह दृश्य भी मेरी आँखों के सामने फिर गया, जिस का ज़िक्र अभी माँ ने किया था, और एक बार मेरा रक्त खौल उठा। सुबह छाया अच्छी भली थी। आज उसके जीवन का नाटक समाप्त हो जायगा, कम-से-कम इस बात की कोई आशंका न थी और मैं एक काम से कपूरथला चला गया था। मां ने मुझे बताया कि लगभग चार बजे मोहल्ले में फेरी लगा-कर कपड़े बेचने वाला आया और छाया ने उससे कपड़े ख़रीदे। फिर दर्ज़िन को बुलाकर उसे सीने के लिए दिए। इसके पश्चात् अचानक उसकी तबीयत घबरा गई और उसने कहा—मां पानी पिलाओ। मालूम होता है, अन्तिम घड़ी आ पहुँची है। माँ ने उसे पानी पिलाया। इसके पश्चात् वह अचेत हो गई और उसकी साँस चलने लगी। घर उस समय मां और कैलाश के अतिरिक्त कोई था नहीं और चारपाई अथवा ऊपर की मंजिल में मर जाना हिन्दुओं में बुरा समझा जाता है। माँ ने कैलाश की मिन्नत की—किसी तरह मेरी सहायता करके इसे नीचे पहुँचा दो। किन्तु उसे उठाना तो दूर रहा, वह तो बीमार के कमरे के पास भी न फटकता था और माँ ठहरीं पतली-दुबली और दुर्बल। किन्तु चारपाई पर मरने से उसकी आत्मा नरक में जायगी, इस डर से जिस तरह बन पड़ा उन्होंने उसे उठाया। सीढ़ियों तक भी न ले जा सकीं,

वहीं ज़मीन पर रख दिया और कैलाश को आवाज़ दी। वह उतरा भी नहीं। अन्त में इसी तरह घिसटती घिसटाती उसे नीचे लाईं और लाकर ठंडे फर्श पर लिटा दिया। मनुष्य और उसका अहंकार! मृत्यु के पश्चात् तेरी जो दुर्गति होगी उसकी तो ख़ैर, मौत से पहले भी तेरी यह दुर्दशा हो सकती है।

उस समय छाया को होश आया और किसी अज्ञात-शक्ति के बल पर वह ज़रा सी उठी। उसने आँखें फाड़कर इधर-उधर देखा। कदाचित मृत्यु के आगमन से घबरा गई थी—मैं कहाँ हूँ?

मां ने कहा—तुम्हारी तबीयत घबड़ा गई थी।

—मुझे ऊपर ले चलो।

किन्तु उत्तर सुने बिना वह लेट गई और नहीं उठी।

मां ऊपर जाकर उसका बिस्तरा ले आईं, उन्होंने बिस्तर उसके नीचे बिछाया, सिरहाने दाने रखे और दिया जला दिया।

मृत्यु से पहले मेरी पत्नी की जो दुर्दशा हुई उसका हाल सुनकर मुझ पर उन्माद सा छा गया। चाहा कि मर जाऊँ या मार दूँ, किन्तु मौका ही ऐसा था, खून के घूँट भरकर रह गया। बेबसी ने मेरी ज़बान बन्द कर दी। आँखों ने उसके पिचके हुए गालों, बन्द आँखों और सटे हुए ओठों को देखा और रो दीं।

सुबह उसका शव आग को सौंप दिया गया। मैंने अन्तिम

वार उसकी सूरत देखी थी। सुन्दर चाँद से चेहरे पर स्याही फिर गई थी, भरे हुए गाल पिचक गये थे, और आँखें गढ़ों में बन्द थीं। हाँ, दान्त वही थे—खूबसूरत, श्वेत दांत, जिनसे ओंठ ऐसे चिमट गए थे, जिस तरह शरीर को मौत चिमट गई थी। इस कलेवर में कितना भोला-भाला दिल था; उसे कितनी जल्दी ठेस पहुँच जाती थी, किन्तु अब...अब...यह निठुर धरती, ये सूखी लकड़ियां और यह आग! संतोष का बाँध टूट गया, रुलाई आ गई, खूब जी भरकर रोया। वापस आया तब सिर भारी था। आकर चुपचाप कमरे में लेट गया। दिन भर शोक करने के निमित्त आने वालों का ताँता बँधा रहा, किन्तु मुझे इन बातों से घृणा थी।

भाई के रूखे व्यवहार ने मेरे दुःख को दुगुना कर दिया था।

* * * *

जब बारहवें दिन क्रिया-कर्म से निबट कर मैं लाहौर जाने को तैयार हुआ तो उस समय अचानक कैलाश ने आकर कहा—भाई साहब आप अरुण को डाक्टर को दिखाए जाते तो अच्छा था, उसकी तबीयत कुछ ठीक नहीं रहती। मैंने एक निमिष के लिए अपने बच्चे को देखा, जो कैलाश की गोद से चिपटा हुआ था—कमज़ोर और उदास! मैंने उसे गोद में उठा लिया। इन दिनों मैं उसकी ओर से बेपरवाह सा हो गया

था। वास्तव में अपने दुःख में मैं अपने आप को, अपने बच्चे को, सब को भूल गया था। छाया की मृत्यु सम्भावना से दूर न थी, सामने दिखाई ही देती थी, किन्तु फिर भी, प्यार और मुहब्बत के, एकता और अनन्यता के चार वर्षों के बाद यह विछोह ! तबीयत पर उन्माद और उदासी छाई जाती थी। मैंने उस गाड़ी से जाने का विचार छोड़ दिया और बच्चे को डाक्टर के यहां ले गया। कोई विशेष रोग तो था नहीं उसे, हाँ, दुर्बलता थी और गले पर कुछ गिल्टियाँ थीं। डाक्टर साहब ने उसे ताकत की दवाई दी और गले पर आयोडेक्स लगा दी। शाम को जब मैं फिर जाने लगा तब कैलाश ने आकर पूछा—भाई साहब डाक्टर ने क्या आदेश दिया है ? मैंने कहा—यह ताकत की दवा है। एक चम्मच प्रातः सायं इसे पिला दिया करना। मैं आयोडेक्स तुम्हें लाहौर से भेज दूंगा और कोई अच्छी सी शक्तिवर्धक औषधि भी।

और अभी लाहौर आए मुझे कुछ ही दिन हुए थे कि कैलाश का पत्र पहुँचा। लिखा था—भाई साहब, आयोडेक्स भेज दीजिए। मेरी तबीयत वहाँ से आने के बाद कुछ ठीक न रही थी, कुछ विचित्र प्रकार का आलस जी पर छाया रहता था। मैं औषधियां न भेज सका। कैलाश के दो पत्र और आए किन्तु मुझे कुछ हरारत रहने लगी थी। फिर उसका एक और पत्र आया, जिसमें उसने लिखा था—ताक़त की दवा खत्म होगई

है, उससे विशेष कोई लाभ नहीं हुआ, अच्छा हो यदि आप कोई दूसरी औषधि भेज दें। उस दिन मेरी तबीयत ठीक न थी, तो भी मैं डाक्टर के यहाँ गया। उसके आदेशानुसार मैंने 'ग्रीमल्ट सिरप' की एक शीशी खरीदी और आयोडेक्स लेकर वापस लौटा। सोच रहा था कि किस तरह दोनों चीज़ें भेजूँ कि इतने में कैलाश का तार आया—अरुण की हालत नाज़ुक है जल्दी पहुँचो।

मेरे हाथ पैर फूल गए। टाइम देखा, गाड़ी छूटने में दस मिनट थे, भागा-भागा स्टेशन पर पहुँचा। इधर मैंने पायदान पर पाँव रक्खा, उधर गाड़ी चल दी। जाकर सीट पर बैठ गया और फिर लेट गया।

एक यात्री ने पूछा—आप की तबीयत ठीक नहीं क्या ?

किन्तु मैं बोला नहीं, चुप-चाप लेटा रहा। ठीक समय पर गाड़ी लोहियां रुकी। मैं ज़ल्दी-जल्दी टिकट देकर घर की ओर भागा। थोड़ा सा मार्ग था, पर समाप्त होने में ही न आता था। कुछ ज्वर, कुछ चिन्ता—मेरे पाँव काँप रहे थे। घर पहुँच कर देखा बच्चे को बहुत तेज़ बुखार है और ज्वर की तीव्रता से उस पर बेहोशी छाई हुई है। मैं भागा भागा डाक्टर को लाया। मालूम हुआ निमोनिया हो गया है, अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। तनिक-सी असावधानी से बच्चे की जान जा सकती है।

मुझे स्वयं उस समय ज्वर था। मैंने बेबसी की आँखों

से कैलाश की ओर देखा, किन्तु शायद डाक्टर की बात से उसके दिल को धक्का पहुँचा था। बच्चे से उसे बहुत प्यार हो गया था। दिन रात वह उसके साथ ही रहता था। मैंने देखा कैलाश का रंग पीला पड़ गया है। और टकटकी बाँधे बच्चे की ओर देख रहा है—हसरत भरी आँखों से, उस साहुकार की भाँति जिसके सामने उस का सब कुछ लुट रहा हो।

मैंने उसके कन्धे को छुआ।

वह चौंक पड़ा।

मैंने कहा—मुझे कुछ हरारत-सी हो रही है, जाओ डाक्टर साहब के यहाँ से औषधि ले आओ। और चुपचाप वह डाक्टर साहब के साथ चला गया।

* * * *

इसके बाद जिस परिश्रम और सावधानी से, जिस प्यार और लगन से उसने बच्चे की सेवा की, वैसी न तो मैं और न उसकी स्वर्गीय मां ही कर सकती। सारी-सारी रात वह उसके सिरहाने बैठा रहा, समय समय पर दवाई पिलाता रहा, और मैं? मैं तो चेतना-हीन-सा, शक्ति-हीन-सा काम करता था।

एक रात बादल घिर आए, बिजली चमकने लगी और वायु के वेग से मकानों के किवाड़ खड़खड़ा उठे। मेरा दिल बैठ गया। बच्चे की दशा कुछ सुधर रही थी। ख़याल था कि यदि और कुछ दिन ऐसे ही बीत गए तो आराम आ जायगा,

किन्तु यह कम्बख़्त घटाएँ, इन को आज ही उठना था। हमने दरवाज़े लगा दिए, कमरे में अँगीठी जला दी। कोई ११ बजे बच्चा तेज़, उखड़ी-उखड़ी साँस लेने लगा। मैंने कैलाश से कहा—किसी तरह डाक्टर को बुला लाओ, आसार अच्छे नहीं दिखाई देते। चुपचाप कैलाश चल दिया। खिड़की के शीशे से मैंने देखा—मूसलाधार मेंह बरस रहा है, एक हाथ में छाता सँभालता, वायु के वेग का, अँधेरे का, वर्षा का मुक़ाबला करता कैलाश जा रहा है। शरीर पर केवल एक क़मीज़ और निकर पहने था। सहसा एक विचार से मेरा हृदय धड़क उठा। मैंने ज़रा-सी खिड़की खोल कर उसे ज़ोर से आवाज़ दी—कैलाश, कम्बल लेते जाओ। सर्दी खा जाओगे। किन्तु उसने शायद नहीं सुना या सुनकर भी वापस मुड़ना उचित नहीं समझा। उन्मादियों की भाँति वह बढ़ता ही गया। मैंने खिड़की बन्द कर दी और दीर्घ निश्वास छोड़ कर बच्चे के सिरहाने आ बैठा।

कोई एक घंटे के बाद डाक्टर आया, अपना निचुड़ता हुआ कोट खूँटी पर टाँग कर, आग ताप कर, डाक्टर ने स्टेथोस्कोप निकाला, बच्चे का निरीक्षण किया, और एक दवा का कुछ अँश चम्मच में डालकर उसके मुँह में उँड़ेल दिया।

—आज की रात यदि बच गया तो डर नहीं। यह कह कर डाक्टर ने कोट पहना, छाता उठाया और चलने को उद्यत होते हुए मेरी ओर देखा। मैंने कोट की जेब से रुपये

निकाल कर उनकी फ़ीस दी। डाक्टर चले गए, कैलाश भी दवाई लेने उनके साथ गया। सारी रात हम साँस रोके बच्चे की हालत देखते रहे, समय के अनुसार दवा पिलाते रहे, परन्तु इस तमाम परिश्रम, मेहनत और सावधानी के बावजूद भी, बच्चे को न बचना था और न बचा। रात के पिछले पहर मेरा शरीर शिथिल हो रहा था, अंग-अंग दुख रहा था, इसलिए मैं कैलाश को उसके सिरहाने खड़ा छोड़ कर वहीं फर्श पर लेट गया।

मां की चीख़ से मैं जाग पड़ा। देखा कि बच्चा फर्श पर मृत पड़ा है, और रौशनदानों से सुबह का प्रकाश कमरे में झाँक रहा है। शायद उसे जगाने के लिए आया था। किन्तु उसे क्या ख़बर कि सोने वाले ने मौत से होड़ लगा ली है। वह न जागेगा, न जागेगा—अपनी मां के पास चला गया है वह।

अभी एक घाव भरा भी न था कि दूसरा लगा। दिन होते होते घर भर में कोहराम मच गया और मैं तो इतना निराश हुआ कि हिम्मत हार बैठा। किन्तु चाहे जो कुछ हो, अब जब वह मर गया था, उसे आख़िरी मंज़िल पर पहुँचाने का प्रबन्ध भी तो करना था। और मैं अपने आपको इतना शिथिल, इतना कमज़ोर महसूस करता था कि श्मशान तक ज़ाना मुझे दूभर दिखाई देता था। स्त्रियों ने नहला-धुला कर बच्चे को क़फ़न में लपेट दिया। पण्डित ने आवश्यक रस्में अदा कीं। बैठक में बिरादरी के कुछ लोग भी जमा हो गए

लेकिन शव को उठा कर कौन ले जाए? मैं जब से आया था, ज्वर से पीड़ित था, और फिर यह चोट! मैंने कैलाश को आवाज़ दी। वह वहाँ न था। सब कमरों में ढूँढा, न मिला, अन्त को गिरता-पड़ता ऊपर गया। उसके कमरे में पहुँचा। अपने बिस्तर पर वह औंधे मुँह पड़ा था।

मैंने उसे आवाज़ दी, न बोला, हिलाया, न हिला। ज़रा ज़बरदस्ती से मैंने उसका मुँह अपनी ओर किया। आँखें लाल थीं और बिस्तर आँसुओं से भीग गया था।

मैंने कहा—कैलाश, हौसला करो।

और वह जिसे मैं पाषाण कहता था, बच्चों की तरह फूट फूट कर रोने लगा।

Sri Pratap Singh
Library
Srinagar.

हमारी अपनी प्रकाशित सर्वोत्तम हिन्दी पुस्तकें

१ **गल्पमंजरी**–हिन्दी के सर्वोत्तम गल्पलेखकों की गल्पों का संग्रह । संग्रहकर्ता–भारत विख्यात श्रीसुदर्शन पक्की जिलद द्वितीयावृत्ति	२॥)
२ **बृहद्भारतीय चित्रकारी में रामायण**–सचित्र-लेखक–डा.के. एन सीताराम एम. ए.	२॥)
३ **सुदर्शन सुमन**–इसमें प्रसिद्ध गल्पलेखक श्रीसुदर्शन जी की सर्वोत्तम कहानियों का संग्रह है	२)
४ **श्रीहर्ष**–लेखक—श्रीराधाकुमुद मुकर्जी एम. ए.	१॥)
५ **सूर-सूक्ति-सुधा**–संग्रहकर्ता–भारतविख्यात श्रीवियोगीहरि द्वितीयावृत्ति	१।)
६ **दाहर** (अथवा सिन्धपतन)—नाटककार श्री उदयशंकर भट्ट ४र्थावृत्ति	१)
७ **राका**—हिन्दी के यशस्वी कवि श्रीउदयशंकर भट्ट की कविताओं का संग्रह	१)
८ **महाराणा प्रताप**—लेखक श्रीरामशर्मा एम. ए. द्वितीयावृत्ति	१)
९ **अम्बा** (वियोगान्त एवं मौलिक नाटक)—लेखक श्रीउदयशंकर भट्ट	॥।=)
१० **गल्पमाला**—संग्रहकर्त्ता—डा० बनारसीदास जैन द्वितीयावृत्ति	२)
११ **गल्परत्नावली**- ,, आचार्य श्रीचतुरसेन जी	१॥।=)
१२ **कलरव**—सम्पादक—श्रीहरिकृष्ण प्रेमी	२)
१३ **अजीतसिंह**—ऐतिहासिक नाटक लेखक श्रीचतुरसेन शास्त्री	१।)
१४ **ब्रजविनोद**—कवि भवानीदास विरचित	॥।)
१५ **सगर विजय**—नाटक ले० श्रीउदयशंकर भट्ट	)
१६ **वध्यशिला**—नाटक ले० श्रीजगदीशलाल	)
१७ **मत्स्यगन्धा**—भावनाट्य—ले० श्रीउदयशंव	)
१८ **जयपराजय**—नाटक ले० श्री उपेन्द्रनाथ अ	॥)
१९ **भाग्य चक्र**—नाटक ले० श्री सुदर्शन जी	१।)
२० **कालिदास**—लेखक वा० वि० मिराशी एम. ए.	३।)

SPS
891.433 J 19 K
11561

इनके अतिरिक्त हमारे हां से हर एक प्रकार की संस्कृत, हिन्दी पुस्तकें स्वल्प मूल्य से मिलती हैं:—

ब्रांच:—

मोतीलाल बनारसीदास
बुकसेलर्स
पो० बांकीपुर-पटना

हैड आफिस:—

मोतीलाल बनारसीदास
संस्कृत-हिन्दी-पुस्तक विक्रेता
सैदमिट्ठा P. Box 71 लाहौर

Sri Pratap Singh Library